



कमबद्धपर्याय प्रवचन

(श्री समयसार शास्त्र की गाथा ३०८-३११ पर
पूज्य गुरुदेवश्री का मर्मउदघाटक अक्षरशः प्रवचन)



श्री महावीरस्वामी

ॐ
ॐ
ॐ

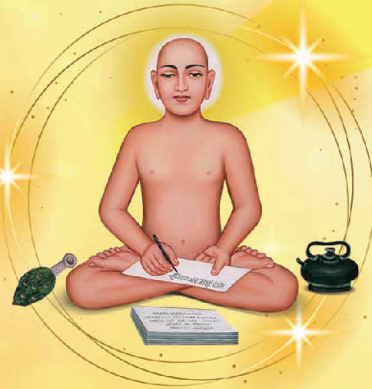


श्री सीमंधरस्वामी

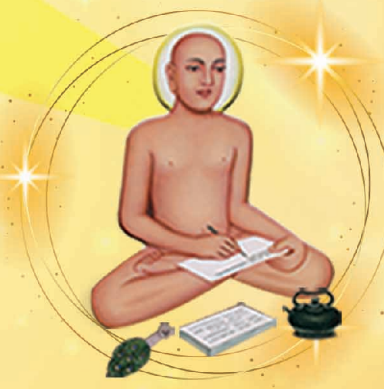
ॐ
ॐ
ॐ



श्री समयसारजी

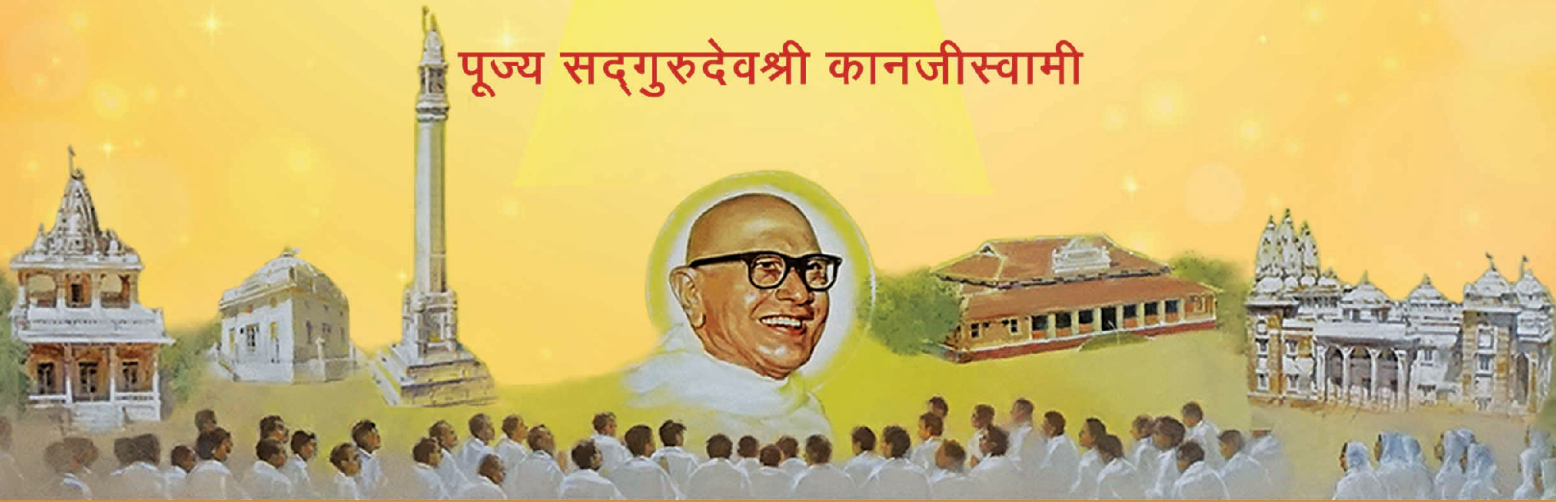


श्री कुंदकुंदाचार्य



श्री अमृतचंद्राचार्य

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी



ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

क्रमबद्धपर्याय प्रवचन

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीत श्रीसमयसार परमागम की
गाथा 308 से 311 पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1979 के धारावाही आठ शब्दशः प्रवचन)

●
: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाडा (राजस्थान)

●
: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2078

वीर संवत
2548

ई. सन
2022

—: प्रकाशन :—
ज्ञानपर्व श्रुतपंचमी
(ज्येष्ठ शुक्ल 5, दिनांक 04 जून 2022)
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप-सेटिंग : विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़



प्रकाशकीय

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं ॥

भगवान् महावीर और गौतम गणधर के पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेहक्षेत्र जाकर सीमन्धर भगवान् की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान् योगीश्वर हैं। अनेक महान् आचार्य आपके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं, इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी आपके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

आप निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान् का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पौन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते आपने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़—ये पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना आपने की है।

श्री समयसार, इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नौ तत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम अनुसार जिनप्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व, ज्ञेयतत्त्व और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मुनिदशा के निश्चय और व्यवहार आवश्यक का और मोक्षमार्ग का स्पष्ट सत्यार्थ निरूपण है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, उसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

सर्वज्ञ भगवान् के ज्ञान में वस्तु का स्वरूप क्रमरूप और अक्रमरूप झलक रहा है। इस अक्रमरूप स्वभाव को द्रव्य और गुण कहते हैं तथा क्रमरूप स्वभाव को पर्याय कहते हैं। विश्व में

समस्त वस्तु की / द्रव्य की यही क्रमरूप और अक्रमरूप द्रव्य-गुण-पर्यायमय व्यवस्था है। क्रमरूप और अक्रमरूप स्वभाव की सदृश्यता को अर्थात् एकरूपता को शुद्ध परिणमन कहा जाता है और क्रमरूप तथा अक्रमरूप स्वभाव की विसदृश्यता को अर्थात् विरूपता को अशुद्ध परिणमन कहा जाता है। विश्व में छह द्रव्यों में से चार द्रव्य तो शुद्धरूप ही परिणम रहे हैं; परन्तु जीव और पुद्गल, ये दो द्रव्य शुद्धरूप तथा अशुद्धरूप परिणमते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

जीवद्रव्य के अशुद्ध परिणमन को ही अज्ञानी—अप्रतिबुद्ध अवस्था कहा जाता है और वह दुःखरूप है। अनादि काल के अप्रतिबुद्ध जीव को समयसार में आचार्य भगवान ने प्रतिबुद्ध होने का मार्ग—मोक्षमार्ग दर्शाया है। अनादि काल से यह अप्रतिबुद्ध जीव अपनी मिथ्याबुद्धि से पीड़ित हो रहा है। इस विपरीत बुद्धि का सच्चा ज्ञान-श्रद्धान होने पर अभाव होता है। जीव की विपरीत बुद्धि बहुत अलग-अलग प्रकार की होती है, उसमें मुख्यरूप से पर में एकत्वपना, ममत्वपना, कर्तृत्वपना, भोक्तृत्वपना और स्वामित्वपना है। जीव का द्रव्यस्वभाव ज्ञाता-दृष्टा और अकर्तास्वभाव है, परन्तु अज्ञानी जीव अपने को पर का कर्ता और भोक्ता मानता है। यह उसका पर में कर्तृत्वपना अकिंचित्कर है। इसे सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार की 308 से 311वीं गाथा में आचार्य भगवान ने बहुत स्पष्टरूप से समझाया है। यहाँ आत्मा का अकर्तृत्वपना कटकादि के दृष्टान्तपूर्वक समझाया गया है। पूज्य गुरुदेवश्री ने इसी गाथा के आधार से क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद फूँका है।

यहाँ प्रस्तुत प्रवचन वी.सं. 2505 के आषाढ माह के आठ प्रवचन हैं। आषाढ और श्रावण माह में सोनगढ़ में नियमित शिक्षण-शिविर का आयोजन होता था। इस शिक्षण-शिविर में बहुत दूर-दूर से मुमुक्षु आते थे और पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि वे नितरते सत्यधर्म का श्रवण करके निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसा गहन विषय इन शिविरों में लिया जाता था। यह गहन आठ प्रवचन यहाँ शब्दशः शास्त्ररूप से प्रस्तुत किये गये हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री की प्रभावना का ही फल है। अध्यात्म का रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से व्यक्त करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन लें, कि जिससे यह वाणी सुरक्षित रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हों, ऐसी भावना

के फलस्वरूप समयसार ग्रन्थ की 308 से 311 गाथा पर हुए प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री दिव्यदेशना को ओडिया टेप में उतारने का कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस अवसर पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हाल कर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी जाती है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया जाता है। ये प्रवचन सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य गुजराती भाषा में निजेश जैन द्वारा किया गया है तथा श्री अतुलभाई जैन और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा इन प्रवचनों को जाँचने का कार्य किया गया है।

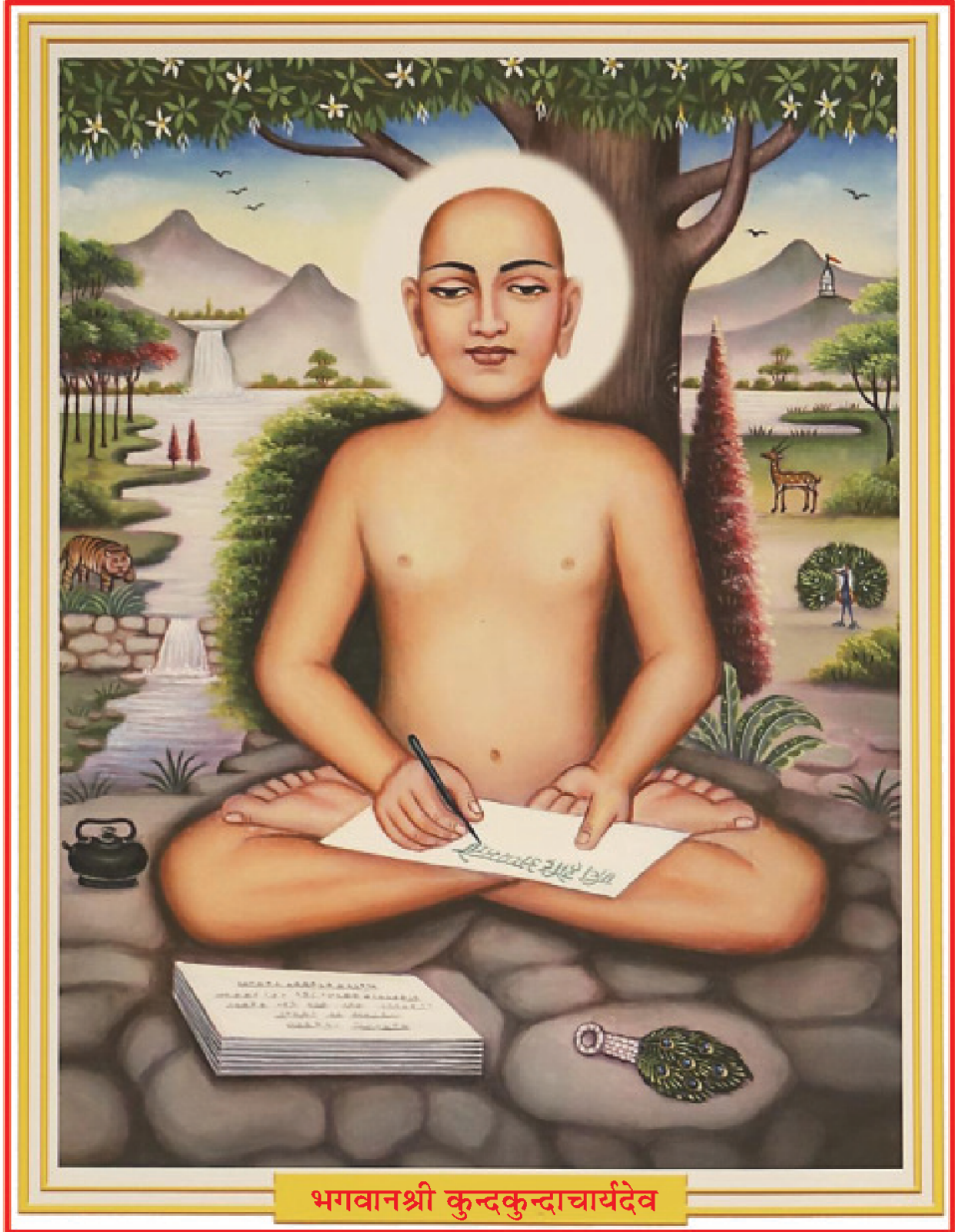
हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी इन प्रवचनों का विशेष लाभ प्राप्त कर सकें, तदर्थ प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर और सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। संस्था सभी के प्रति आभार व्यक्त करती है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि आपको कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत कराने का अनुग्रह करें, जिससे अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ vitragvani.com पर शास्त्र-भण्डार, गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन के अन्तर्गत उपलब्ध है। vitragvani app पर भी यह शास्त्र उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधें, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई



भगवानश्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव



श्री समयसारजी-स्तुति



(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोडे परिणति।

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।





अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी



श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!



अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यो के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरू हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भोजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरू किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरू हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्गपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणामन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	पृष्ठ से तक
1	21-07-1979	1-18
2	22-07-1979	19-34
3	23-07-1979	35-50
4	24-07-1979	51-67
5	25-07-1979	68-84
6	26-07-1979	85-99
7	27-07-1979	100-115
8	28-07-1979	116-131



॥ श्री परमात्मने नमः ॥

क्रमबद्धपर्याय प्रवचन

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत
श्रीसमयसार परमागम की गाथा ३०८ से ३११ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. १९७९ के वर्ष के प्रवचन

आषाढ कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक-२१-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-१

अब आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं:—

यह गाथा जो है, वह मोक्ष अधिकार की चूलिका है। यह शुरुआत की गाथा जो है, वह मोक्ष अधिकार पूरा हुआ, उस मोक्ष अधिकार की चूलिका है। ३२१ गाथा में समयसार... पूरे समयसार की चूलिका है। 'चूलिका' का अर्थ यह है कि जो कथन आ गया, वह भी है; नहीं आया, वह भी है, (और) विशेष स्पष्टीकरण करना, उसका नाम चूलिका है। तो यह गाथा मोक्ष अधिकार की... मोक्ष अधिकार पहले आ गया है न? उसकी चूलिका है। संस्कृत टीका में सब है।

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।

जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥३०८॥

जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते ।

तं जीव-मजीवं वा तेहि-मणण्णं वियाणाहि ॥३०९॥

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो आदा ।

उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥३१०॥

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
 उप्पज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसदे अण्णा ॥३११॥
 जो द्रव्य उपजे जिन गुणों से, उनसे जान अनन्य वो।
 है जगत में कटकादि, पर्यायों से कनक अनन्य ज्यों ॥३०८॥
 जीव-अजीव के परिणाम जो, शास्त्रोंविषै जिनवर कहे।
 वे जीव और अजीव जान, अनन्य उन परिणाम से ॥३०९॥
 उपजै न आत्मा कोइसे, इससे न आत्मा कार्य है।
 उपजावता नहिं कोइको, इससे न कारण भी बने ॥३१०॥
 रे! कर्म-आश्रित होय कर्ता, कर्म भी करतार के।
 आश्रित हुवे उपजे नियम से, अन्य नहिं सिद्धी दिखै ॥३११॥

गुण शब्द से पर्याय लेना ।

टीका—सूक्ष्म बात है। यह तो मोक्ष अधिकार की चूलिका है। उसमें (—शास्त्र में) न आया हो, ऐसा विशेष भी यहाँ लेना, उसका नाम चूलिका है। कहते हैं, प्रथम तो यह कहना है कि... प्रथम अर्थात् 'तावत्' शब्द पड़ा है संस्कृत में। 'तावत्' मुख्य बात तो यह कहना है कि... सूक्ष्म बात है। जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... जीव क्रमबद्ध... एक के बाद एक परिणाम, जो क्रमबद्ध होते हैं (अर्थात्) आगे-पीछे नहीं और पर से नहीं। आहाहा! यह क्रमबद्ध का बड़ा झगड़ा है न। ऐसा क्रमबद्ध जो हो तो पुरुषार्थ कहाँ रहा। एक के बाद एक पर्याय जब क्रमबद्ध होगी... है तो ऐसा ही। जीव में क्रमसर... क्रमवर्ती कहा है, (उसे) यहाँ क्रमनियमित—क्रमबद्ध कहा है। जिस जीव को जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह क्रमबद्ध अर्थात् क्रम में आनेवाली है, वो आती है और उस पर्याय का स्वकाल ही यह है, जन्मक्षण यह है। जीव में जिस समय जो पर्याय होगी, जो पर्याय हो, आगे-पीछे कोई नहीं। क्रमबद्ध की बड़ी चर्चा हुई थी (संवत्) १३ के वर्ष में। क्रमबद्ध का ऐसा अर्थ किया कि एक पीछे होगी, परन्तु इसके पीछे यही (होगी), ऐसा नहीं। कहा, एक के बाद एक हो, वही हो, उसका नाम क्रमबद्ध है। १३ के वर्ष में बड़ी चर्चा हुई थी, ईसरी में। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

यह जीव—आत्मा जो है, उसकी पर्याय-अवस्था क्रमबद्ध-क्रमनियम (अर्थात्) जिस समय में जो पर्याय होनी है, वह होगी, पीछे (-बाद में) जो होनेवाली (है, वह बाद में) होगी, पीछे (-बाद में) जो होनेवाली (है वह बाद में) होगी—ऐसे क्रमसर होती है। आगे-पीछे करने की ताकत इन्द्र और नरेन्द्र की भी नहीं है। आहाहा! परन्तु वह क्रमबद्ध का तात्पर्य क्या है, वह कहते हैं, देखो। पहले कहा न? **आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं।** ऊपर, गाथा के ऊपर। अकर्तृत्व... क्रमबद्ध में अकर्तृत्व सिद्ध करना है। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! प्रत्येक जीव की पर्याय जिस समय होनेवाली है, उसी समय होगी, आगे-पीछे करने की ताकत इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र की भी नहीं है और पर से तो होती नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यह कहते हैं, अकर्तापना सिद्ध करने को क्रमबद्ध की बात कहते हैं। क्रमबद्ध कहने को अकर्ता (कहते हैं) और अकर्तापना सिद्ध करने को क्रमबद्ध कहते हैं। आहाहा!

पत्र आया था किसी का कि १४वीं, ३८वीं, ७३वीं गाथा (लो)। परन्तु यह (गाथा) लेने की आवश्यकता थी। वह तो चली है १९बार। १९वीं बार यह (समयसार) चलता है। दो गाथा तो १९ बार चल गयी है। पर यह शिक्षण शिविर है तो यह गाथा (लेने का विकल्प आया)। बहुत कठिन है। आहाहा!

जीव की जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। भगवान देखते हैं तो होगी, ऐसा भी नहीं। भगवान तो ज्ञायक हैं, वे तो सर्वज्ञ हैं। वे तो, होती है उसको जानते हैं और होनेवाली पर्याय प्रत्येक जीव में—निगोद से लेकर सिद्ध सबमें... आहाहा! जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह क्रमसर—क्रमबद्ध—नियमसर उत्पन्न होगी। तो उसका तात्पर्य क्या है?

प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... जीव अपने परिणामों से... अपने क्रमसर परिणामों से उत्पन्न होता है। है? होता हुआ जीव ही है... ये परिणाम पर से तो होते नहीं और अपने परिणाम से पर में कुछ होता नहीं और अपने परिणाम भी क्रमबद्ध—एक के बाद एक होनेवाले हैं, वे ही होंगे। आहाहा! पर्याय क्रमबद्ध है (अर्थात् होनेवाली) होगी, तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? वह कहा है। इसमें अकर्तापना

सिद्ध करना है। आहाहा! अकर्तापना भी नास्ति से बात है, बाकी वास्तव में ज्ञाता सिद्ध करना है। पण्डितजी! आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवत्! तेरी चीज़ ऐसी है। लोगों ने अपना पक्ष छोड़कर सुनी नहीं कभी (कि) सत्य क्या है। आहाहा!

क्रमबद्धपर्याय होती है, तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? तो कहते हैं कि क्रमबद्ध में अकर्तापने का पुरुषार्थ है। जिस समय में जो पर्याय (होनेवाली है, वह) होगी, उसका जब निर्णय करते हैं, तब ज्ञायक पर दृष्टि जाती है। ज्ञायक पर दृष्टि होने से राग का... सूक्ष्म बात है। वास्तव में तो यह पर्याय का भी कर्ता नहीं। इतनी सब बात यहाँ नहीं ली। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, उसका निर्णय कब होता है? कि उसका मैं अकर्ता हूँ, (ऐसा निर्णय हो)। अकर्तापने का निर्णय कब होता है? कि अपने ज्ञायकभाव पर नजर पड़े, अपने ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि हो, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। ज्ञायकस्वभाव पर (दृष्टि करने से) अकर्तापने का पुरुषार्थ आया। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

(समयसार) ७२ गाथा में तो 'भगवान' कहकर बुलाते हैं आचार्य। 'भगवान आत्मा' ऐसा कहते हैं। ७२ गाथा में है। प्रभु! पुण्य और पाप अशुचि है, मैल है। दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा का भाव भी मैल है। 'भगवान आत्मा' ऐसा शब्द है। संस्कृत टीका ७२ (गाथा)। भगवान आत्मा निर्मलानन्द ज्ञाता-दृष्टा है, आहा! निर्मल है। पुण्य और पाप अशुचि और मैल है। क्रमसर परिणाम होता है तो भी जो पुण्य-पापरूप परिणाम होता है, वह है तो दुःखरूप और मैल। आहाहा! ज्ञानी को भी अपना आत्मा राग और पर का अकर्ता है, ऐसी बुद्धि जब होती है, तब उसकी बुद्धि द्रव्य पर जाती है। समझ में आया? द्रव्य ज्ञायक है तो ज्ञायक पर दृष्टि होने से ज्ञाता-दृष्टा का निर्णय क्रमबद्ध में होता है। इसका—अकर्तापने का निर्णय ज्ञाता-दृष्टापने में होता है। आहाहा! समझ में आया?

तो कोई ऐसा कहे, केवली को देखा ऐसा होगा, हम क्या करें? समझ में आया? पर्याय क्रमबद्ध होगी, भगवान ने देखा, वैसा होगा, तो हम क्या कर सकते हैं? यह प्रश्न हमारे ७२ के वर्ष में उठा था। संवत् १९७२। कितने वर्ष हुए? ६३ वर्ष। ६० और ३ वर्ष

पहले। उसमें थे न? सम्प्रदाय में थे न पहले? यह प्रश्न ७२ के वर्ष में उठा था। बड़ा प्रश्न चला। दो वर्ष हम नहीं बोले। ७० में दीक्षा और ७२ में यह बात चली। दो वर्ष की दीक्षा थी। उस समय यह कहते थे कि केवली ने देखा वैसा होगा, अपने क्या करे? तो कहा, सुनो! केवली ने देखा वैसा होगा, तो पहले केवलज्ञानी इस जगत में हैं... ज्ञान की एक पर्याय तीन काल—तीन लोक जानती है—ऐसी एक समय की पर्याय जगत में है—सत्ता है, उसका स्वीकार है? समझ में आया?

सेठ! सूक्ष्म बात है। तुम्हारे पैसे-पैसे में यह बात है नहीं कहीं। आहाहा! ६३ वर्ष पहले। छोटी उम्र थी। चर्चा चली थी हमारे सम्प्रदाय में। हमारे गुरुभाई बहुत कहते थे, क्या करें भैया? भगवान ने देखा वैसा होगा, हम क्या पुरुषार्थ करें? (मैंने कहा), सुनो! भगवान ने देखा वैसा होगा, तो भगवान हैं ऐसा पहले निर्णय है (तुमको)? बाद में, देखा ऐसा होगा, यह (बात) तो बाद में। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जगत में हैं, जिसकी ज्ञान की एक पर्याय में तीन काल—तीन लोक को (कुछ) किये बिना, अपनी पर्याय में जानते हैं—ऐसी जगत में सत्ता है, जगत में ऐसी (सत्ता है कि) ज्ञान की एक पर्याय में तीन काल—तीन लोक देखे। अरे! अपने द्रव्य-गुण-पर्याय त्रिकाल देखे, अपनी तीन काल की पर्याय और उसमें दूसरे की अनन्त तीन काल की पर्याय और छह द्रव्य—सब (देखे)। आहाहा! एक समय की ज्ञानपर्याय में ऐसा दिखे, ऐसी ज्ञानपर्याय की जगत में सत्ता है? देखा ऐसा होगा, वह बाद की बात है। समझ में आया?

बहुत छोटी उम्र की बात है। आहाहा! २५ वर्ष की उम्र थी। अभी तो ९० (वर्ष) हुए। २५ वर्ष की उम्र में—जवान अवस्था में यह बात बहुत चली थी। सम्प्रदाय में हमारे गुरु थे, बहुत शान्त थे। सम्प्रदाय में थे शान्त... शान्त... कषाय मन्द। एकदम विरोध न करे। पहले तो हम बात कहें वो सुने भगवान ने देखा, (ऐसा होगा), परन्तु भगवान जगत में हैं, ऐसी सत्ता का स्वीकार कब होगा? कि केवलज्ञान की पर्याय दूसरे में है और जगत में है—ऐसा स्वीकार अपनी पर्याय में कब होगा? कि अपनी पर्याय... जहाँ सर्वज्ञस्वभाव अन्दर पड़ा है, उस पर नजर जायेगी, तब केवलज्ञान की

पर्याय की सत्ता का स्वीकार यथार्थ होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह अधिकार क्यों लिया? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! समझ में आया? प्रभु! तेरी बात तो अलौकिक है, परन्तु समझ में.... आहाहा!

भगवान परमात्मा अनन्त सिद्ध हैं और महाविदेहक्षेत्र में संख्यात केवली हैं और २० तीर्थकर हैं। आहाहा! सब केवलज्ञानी परमात्मा ने देखा, ऐसा होगा। ऐसे अनन्त सिद्ध, केवली और तीर्थकर केवली एक समय के केवलज्ञान में तीन काल—तीन लोक को देखें, ऐसा होगा, आगे-पीछे नहीं। ऐसा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है। स्वामी कार्तिक में ३२१-२२ गाथा में। भगवान ने देखा ऐसा होगा, इसके अतिरिक्त कभी आगे-पीछे नहीं होगा, ऐसा समकिति मानता है। उससे विरुद्ध माने, वह मिथ्यादृष्टि है—ऐसा लिखा है। आहाहा! ऐसे-ऐसे हम सामायिक कर लें, प्रौषध कर लें, धर्म कर लें, मन्दिर बना दें—उससे धर्म-बर्म कोई है नहीं। आहाहा! लाखों-करोड़ों रुपये खर्च उसमें धर्म है, लाखों मन्दिर बना ले तो धर्म है—ऐसी बात है नहीं। वो तो जगत की चीज़ है। उसके कारण से बननेवाली है तो बनती है। वह अभी आयेगा। उसका कर्ता आत्मा है नहीं। आत्मा उसका कर्ता नहीं, परन्तु उसका—मन्दिर (बनाने का), पूजा का भाव आया, तो यह शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं। आता है, परन्तु वह धर्म नहीं, पुण्य है। समझ में आया? आता है। शुभभाव धर्मी-समकिति, मुनि को भी आता है, परन्तु वे जानते हैं कि यह राग है, हेय है। यह मेरी चीज़ नहीं। राग है, वह दुःखरूप है और भगवान (आत्मा) अतीन्द्रिय आनन्दमय है—उसका जब निर्णय आता है... पर्याय में आनन्द कब आता है? भगवान को ज्ञान की पर्याय के साथ में आनन्द है। पर्याय में निर्णय करे तो आनन्द का स्वाद आना चाहिए। कैसे आता है? आहाहा! (जब) इस पर्याय का लक्ष्य द्रव्य पर जाता है। क्योंकि पर्याय में पर्याय का निर्णय पर्याय के आश्रय से नहीं होता। केवली का निर्णय भी पर्याय के आश्रय से नहीं होता और अपनी पर्याय का निर्णय भी अपनी पर्याय के आश्रय से पर्याय का नहीं होता। पण्डितजी! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! ऐसी अलौकिक बात है।

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! तेरी पर्याय में

‘हम केवलज्ञानी हैं’ ऐसा निर्णय तुझे आया है? कब निर्णय आयेगा। पर्याय के लक्ष्य से आयेगा? हमारे लक्ष्य से आयेगा? पर्याय तो एक समय की है, उसके आश्रय से उसका निर्णय कैसे हो? यह तो पलटती अवस्था है। है क्रमबद्ध, परन्तु पलटती—बदलती अवस्था है। उसके आश्रय से निर्णय कैसे हो? उसका अर्थ है, यह यहाँ कहते हैं। अकर्तापना, क्रमबद्ध का। निर्णय करता है, उसको अकर्तापने की बुद्धि होती है। अकर्तापने की बुद्धि, वह नास्ति से बात की है। अस्ति से कहो तो ज्ञाता-दृष्टा की बुद्धि होती है। आहाहा! समझ में आया?

यह गाथा जरा समझने जैसी है। निर्जरा अधिकार चलता था, परन्तु यह शिक्षण शिविर है तो थोड़ी मूल चीज तो समझे। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे की रकम यह है, मुद्दे की रकम है। कि यह भगवान आत्मा... सर्वज्ञ परमेश्वर जगत में हैं, ऐसा निर्णय पर के लक्ष्य से नहीं होता, पर्याय के लक्ष्य से नहीं होता। मेरा त्रिकाली सर्वज्ञस्वभाव है... सर्वज्ञशक्ति है न? सर्वज्ञशक्ति—गुण है तो गुण के कारण से दृष्टि उत्पन्न होती है, उससे निर्णय होता है कि मेरा सर्वज्ञस्वभाव है और सर्वज्ञस्वभाव में से सर्वज्ञ की पर्याय जगत में प्रगट होती है। तो ये सर्वज्ञ(पने) का निर्णय हो, यह तो सम्यग्दर्शन हुआ। मैं तो सर्वज्ञस्वरूप ही हूँ। आहाहा! मैं पुण्य-पाप का विकल्प नहीं और एक समय की पर्याय जितना भी मैं नहीं। आहाहा! मैं तो सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु (हूँ)। यह ज्ञान-ज्ञायकस्वरूप ऐसा कहा—छठवीं गाथा में ऐसा कहा। ज्ञायक कहा। ‘ण वि होदि अपम्मत्तो ण पम्मत्तो...’ ज्ञायक... ज्ञायक कहो या सर्वज्ञस्वभाव कहो। यह ज्ञायकभाव कहा है। भगवान आत्मा भाववान है और ज्ञायक उसका भाव है। आहाहा! समझ में आया?

यह ज्ञायकभाव जगत में है, मेरे में अस्तित्व है—सत्ता है, पूर्ण प्रभु मैं हूँ। आहाहा! मेरे में ऐसा एक गुण नहीं, परन्तु ऐसे अनन्त गुण परिपूर्ण हैं। परन्तु अनन्त गुण की दृष्टि नहीं (करना)। क्योंकि गुण-गुणी का भेद का लक्ष्य करने से तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! गुण-गुणी के भेद का विचार-निर्णय भी नहीं (करना)। आहाहा! डाह्याभाई! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! मैं एक ज्ञान से तो परिपूर्ण हूँ, आनन्द से परिपूर्ण हूँ, ईश्वरता से परिपूर्ण हूँ, कर्तापने के स्वभाव से परिपूर्ण भी हूँ, वस्तु परिपूर्ण हूँ—ऐसे

अनन्त गुण से मैं परिपूर्ण हूँ। यह परिपूर्ण वस्तु द्रव्य है, वह एकरूप है। (एकरूप वस्तु में) गुण-गुणी भेद नहीं हैं। आहाहा! द्रव्य का जब लक्ष्य, दृष्टि होती है, तब जगत में सर्वज्ञ हैं और उन्होंने देखा ऐसा होगा—ऐसा सच्चा निर्णय समकिति को होता है। आहाहा! भैया! सूक्ष्म बात है, भाई! ये तो वीतरागमार्ग है, भाई!

परमात्मा का विरह पड़ा, परमात्मा तो वहाँ रह गये। आहाहा! सीमन्धर प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। ५०० धनुष (का देह) है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। महाविदेह में कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, उस (बात) को तो दो हजार वर्ष हुए। (परमात्मा) तो वहाँ अरबों वर्ष से हैं और अभी अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! ऐसा करोड़ पूर्व का प्रभु का आयुष्य है। श्वेताम्बर में दूसरी बात है। श्वेताम्बर ८४ लाख पूर्व कहते हैं। वह तो कल्पित बात है। यह तो सन्त अनादि से कहते आये हैं, यह बात है। दिगम्बर मुनि केवली के आढ़तिया... आहाहा!

जीव क्रमबद्ध... इस प्रकार तो गुण सहवर्ती है और पर्याय क्रमवर्ती है—ऐसा पाठ है न? क्रमवर्ती में यह (क्रम)बद्ध नहीं आया। इसलिए यहाँ पाठ में ऐसा लिया है, देखो! **क्रमनियमित** शब्द पड़ा है। क्रम से, परन्तु निश्चय से जो पर्याय (होनेवाली) होगी, वही होगी। क्रम-नियमित। अकेला क्रम नहीं। बड़ी चर्चित है। कोई भी... आचार्य जयसेन की टीका में ऐसा लिखा है कि कोई एक भाव भी यथार्थ समझ में आये, तो सब भाव समझ में आ जाते हैं। ऐसा पाठ है जयसेनाचार्य की टीका में। यह अधिकार मोक्ष अधिकार की चूलिका है। आहाहा! मोक्ष कैसे होता है और मोक्ष होने से पहले सम्यग्दर्शन कैसे होता है? सम्यग्दर्शन, यह मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शन कैसे होता है?

क्रमबद्धपर्याय में... अपनी पर्याय क्रमबद्ध है तो आगे-पीछे तो कर सकते नहीं। पर का तो कर सकते नहीं। अपने आत्मा के अतिरिक्त कोई परमाणु, कोई आत्मा स्त्री का, पुत्र का (हो, उसका) कुछ कर सके, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। मेरी स्त्री है

और मेरा लडका है—ऐसा मानना ही मिथ्या(दर्शन)—भ्रम-अज्ञान है। आहाहा! यह आत्मा भिन्न है, शरीर रजकण भिन्न है। उसमें तेरा कहाँ से आ गया? आहाहा! लक्ष्मी मेरी है (ऐसा मानता है)। लक्ष्मी तो जड़ है, धूल है, अजीव धूल-मिट्टी है। यह अजीव तेरे जीव का कहाँ से आ गया? यहाँ तो इससे आगे जाकर, पुण्य का परिणाम भी मेरा है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। क्योंकि यहाँ क्रमबद्ध में तो पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न अपने सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय करता है, तो पुण्य-पाप का भी अकर्ता हो जाता है।

मैं तो सर्वज्ञस्वभावी ज्ञायक हूँ, तो ज्ञायकभाव राग को करे? (न करे)। क्योंकि आत्मा में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण हैं। (उसके) गुण का पार नहीं है। आकाश के प्रदेश हैं... माप बिना का अलोक... अलोक... अलोक है। उसके प्रदेश (की संख्या) से अनन्तगुने एक जीव में गुण हैं। अनन्त गुण में कोई गुण ऐसा नहीं है कि विकार करे। क्या कहा यह? अनन्त... अनन्त गुण हैं। उसमें विकार करे, ऐसा कोई गुण नहीं है। पर्याय में विकार कैसे होता है? कि पर के लक्ष्य से, पर के वश से विकार होता है। अपना द्रव्य और गुण में विकार होने की ताकत है नहीं। आहाहा! दया-दान के परिणाम करने की भी अपने गुण की ताकत नहीं। गुण तो निर्मल है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण हैं, उसमें विकार करे ऐसा एक भी गुण है नहीं। आहाहा! तो यहाँ कहते हैं कि... मुख्य बात यह कहना है कि... आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। तावत्... हमारी मुद्दे की बात यह है कि... समझ में आया?

क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... अपना परिणाम क्रमबद्ध होता है। आहाहा! आगे-पीछे नहीं। वह चर्चा बहुत चली थी वर्णीजी के साथ। वे कहते थे कि भले परिणाम क्रमबद्ध हो (अर्थात्) एक के बाद एक होता है, परन्तु इसके पीछे यही हो... इसके पीछे यह हो—ऐसा नहीं है। यहाँ ऐसा नहीं है। जो (परिणाम) होनेवाला, वह ही होगा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो परमात्मा के गर्भ की बात है। आहाहा! अरे! इसने कभी निर्णय किया नहीं। स्वसन्मुख (और) पर से विमुख। निमित्त से, राग से और पर्याय से भी विमुख और अपने त्रिकाली स्वभाव के सन्मुख होकर

निर्णय करता है, तब क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय होता है। समझ में आया? आहाहा! बहुत कठिन बात। अभ्यास न हो, लोगों को निवृत्ति न मिले, पूरे दिन पाप का धन्धा। दुकान, स्त्री, पुत्र में रुके, पाप... पाप... पाप। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! चार घण्टे शास्त्र वांचन करना और सत्य के लिये सत्समागम मिलना कठिन। ऐसे (अज्ञानी) मिले (और) उल्टा अर्थ समझावे तो मिथ्यात्व पोषण होता है। आहाहा! समझ में आया? उसमें धर्म... धर्म तो अलौकिक चीज़ है। अभी चौबीस घण्टे में से पुण्य का—शुभभाव का चार घण्टे (निकालना), यह भी समय नहीं... समझ में आया? उसमें यह धर्म... आहाहा!

मेरी चीज अनन्त गुण से परिपूर्ण भरी है, उसका जिसे निर्णय हो, उसको क्रमबद्ध का निर्णय होता है। उसको केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा होगा, ऐसा उसको निर्णय होता है। समझ में आया? यह (संवत्) १९७२ के वर्ष में बड़ी चर्चा हुई थी। मैंने तो यह कहा था कि देखो! गजसुकुमार... ऐसी बात सुनी है या नहीं? गजसुकुमार श्री कृष्ण का भाई... यह ७२ की बात है। फाल्गुन मास... फाल्गुन मास। गजसुकुमार... गज अर्थात् हाथी के तलुवा हो, ऐसा कोमल शरीर था। गज-सुकुमार। श्रीकृष्ण के भाई। नेमिनाथ भगवान द्वारिका में आये थे, तब हाथी हौदे पर श्रीकृष्ण ने साथ दर्शन करने जाते थे। दर्शन करने जाते थे, तब गजसुकुमार गोद में बैठे थे। जवान अवस्था। तो उसमें एक सोनी की लड़की थी बहुत रूपवाली थी। सोनी... सोनी... सोने की गेंद से खेलती थी। वहाँ देखी तो श्रीकृष्ण ने कहा, इस कन्या को अन्तेपुर में ले जाओ। इस कन्या का गजसुकुमार के साथ विवाह करायेंगे। गजसुकुमार बैठे थे गोद में। वे बात सुनते थे। कन्या को अन्तेपुर में ले गये। वह दोनों भगवान के पास गये। भगवान के पास सुना और उसी समय गजसुकुमार कहते हैं, प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो मैं तो मुनिपना लेना चाहता हूँ। आहाहा!

अभी उनके भाई कन्या को वहाँ व्यवस्थित रखते हैं, यह खबर है। प्रभु! आपकी आज्ञा हो... भगवान कहाँ आज्ञा दे? वे तो ॐ बोलते हैं, वाणी तो है नहीं। परन्तु जिन्हें विनय करवाने का भाव हो तो ऐसे बोले न। प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो मैं मुनिपना लेना

चाहता हूँ। आहाहा! वह घर गये तब उनके माँ के पास.... वह विवाह की बातें.... आहाहा! माता! मैं मेरा स्वरूप साधन करने को साधकपने साधु (होना चाहता हूँ)। माता! आज्ञा दे। माँ! माता रोने लगी। तो कहते हैं—माता! जनेता! तुझे रोना हो तो रो ले, फिर माता नहीं करूँगा, दूसरी माता अब नहीं करूँगा। अब दूसरा गर्भ... मैं तो मोक्ष जाऊँगा। आज्ञा दे, माँ! मैं इस भव में जाऊँगा। आहाहा! भगवान को पूछे बिना छद्मस्थ को इतना निर्णय हो गया। अरे! भगवान आत्मा में इतनी सामर्थ्य है। वहाँ गये और दीक्षित हुए। दीक्षित हुए... तो कहा,... भगवान ने देखा ऐसा होगा ?

ऐसे एक क्षण में मुनि हो गये और मुनि हुए बाद में भगवान के पास आज्ञा ली। प्रभु! मैं तो द्वारिका के श्मशान में बारहवीं प्रतिमा लेकर खड़ा (रहना चाहता हूँ)। दिगम्बर मैं बहुत प्रतिमा नहीं है। सामायिक में बारह प्रतिमा आती है। श्रावक को ११ प्रतिमा है, मुनि को १२ प्रतिमा है। आता है। अपना पाठ है सामायिक में, उसमें सब कुछ है। बारह प्रतिमा है साधु की। १२वीं आखिरी प्रतिमा बहुत जवाबदारीवाली है। प्रभु! आपकी आज्ञा हो तो द्वारिका के श्मशान में जाकर बारहवीं प्रतिमा ले लूँ और ध्यान में बैठूँ। आहाहा! इतना पुरुषार्थ! और ध्यान में बैठे थे, वहाँ वो सोमल कन्या का पिता आया। अरेरे! कन्या अन्तेपुर में गयी और राजकुमार दीक्षा (ले) ? तो कन्या रहेगी क्या ? उसको (द्वेष) हो गया। श्मशान में अग्नि थी न। राख लेकर पानी डालकर पाल बाँधी और अग्नि डाली उसमें। अन्दर में उतर गये। आहाहा! और केवलज्ञान प्राप्त किया। कहा, ये वाणी भगवान की कैसी हो कि उन्होंने मुनिपना ले लिया और मुनिपना लेकर संसार से चले गये। गजसुकुमार... हाथी का तलवा होता है ऐसा (सुकोमल) शरीर (वाले) गजसुकुमार। अग्नि... देह छूट गयी और अन्तर में उतरकर केवलज्ञान हो गया। यह वस्तु भगवान की वाणी में कैसे आयी कि पुरुषार्थ करके मुनिपना (ले लिया) ?

(संवत्) १९७२ के वर्ष। भगवान ने देखा ऐसा होगा... देखा ऐसा होगा—ऐसा करके एक ओर बैठे रहे वहाँ? आहाहा! भगवान ने देखा ऐसा होगा, तो मैंने भी देखा ऐसा होगा। मेरे ज्ञान में भी जब होता है, उसे देखनेवाला मैं हूँ। आहाहा! वह पर्याय की

दृष्टि छूटकर, पर का लक्ष्य छूटकर जब अन्तर में जाते हैं, तो अपने क्रमबद्ध परिणाम का निर्णय होता है। यह पहली लाईन का अर्थ है। लीटी (लाईन) समझे न?

प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे... क्रमसर... आगे-पीछे की बात नहीं। हुकमचन्दजी का लेख है न? क्रमबद्ध का बहुत आता है। हम तो पहले बहुत पुरुषार्थ करते थे। क्रमबद्ध का लेख आता है न। हुकमचन्दजी। आत्मधर्म में बहुत आता है। आहाहा! उसमें तो लोग ऐसा कहते हैं कि क्रमबद्ध होगा, तो पीछे अपने को करना क्या? यह तो (जो होनेवाला है), वह होगा। क्रमबद्ध का निर्णय करने में आत्मा का पुरुषार्थ स्वसन्मुख होता है, यह पुरुषार्थ है। भगवान! तुझे पुरुषार्थ की गति की खबर नहीं। आहाहा! तेरी पर्याय जब जैसी होनेवाली होगी, तुम बदल सकते नहीं और पर से होती नहीं—ऐसा जब निर्णय करने जाते हैं, प्रभु! तो तेरी प्रभुता पर तेरी नजर जायेगी अन्दर। आहाहा! प्रभुता से भरा पड़ा मैं प्रभु हूँ, भगवत्स्वरूप हूँ। भगवत्स्वरूप न हो तो भगवत्स्वरूप की पर्याय कहाँ से आयेगी? समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय जो आती है, भगवत्स्वरूप अनन्त चतुष्टय प्रगट होता है, वो कहाँ से आया? बाहर से आता है? आहाहा! अन्दर में पड़ा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सत्ता, अनन्त सुखादि अन्दर पड़े हैं। आहाहा! उसकी जब एकाग्रता होती है और उस ओर नजर जाती है, तब अनन्त गुण का एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है।

‘सर्व गुणांश समकित।’ श्रीमद् का वचन है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में भी ये है। एकदेश ज्ञानादि का प्रगट होना, वह चौथा गुणस्थान है और सर्वदेश प्रगट होना, वह केवली को है। टोडरमलजी। क्या कहते हैं? आत्मा में जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त—जिसका अन्त न हो, इतनी संख्या में गुण हैं, जब अपने स्वभाव सन्मुख हुआ तो जितनी संख्या है, उन सबका एक अंश व्यक्त अर्थात् प्रगट पर्याय में आता है। सम्यग्दर्शन होते ही ‘सर्व गुणांश समकित’—जितने गुण हैं, इतने व्यक्त अंश, अल्प अंश व्यक्त—प्रगट होते हैं। अकेला सम्यग्दर्शन ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? अकेला सम्यग्दर्शन क्यों? वास्तव में तो ‘भूदत्थो’ में ऐसे कहते हैं कि श्रद्धा को आत्मा में ले जाओ। परन्तु अकेली श्रद्धा आत्मा में आती नहीं, श्रद्धा की मुख्यता से बात की है। समझ में आया? अनन्त गुण की पर्याय इस ओर झुक जाती है।

यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। समझ में आया? सब गुण की पर्याय इस ओर ढल जाती है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। अनन्त... अनन्त गुण की पर्याय जो है, आहाहा! इस ओर झुक जाती है। इस ओर झुक जाती है तो जितनी अनन्त गुण हैं, इतने का एक अंश व्यक्त हो जाता है। आनन्द का अंश, श्रद्धा का अंश, श्रद्धा का अंश अर्थात् समकित, चारित्र्य का अंश वो स्वरूपाचरण, प्रभुता, ईश्वरता का अंश, वीर्य का अंश। अनन्त... अनन्त गुण की पर्याय की रचना करनेवाला वीर्य का अंश प्रगट होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। मार्ग समझे बिना ऐसे के ऐसे करो व्रत, करो भक्ति और करो पूजा। वह शुभभाव है। बापू! यह तो संसार है। आहाहा! आता है, अशुभ से बचने को ज्ञानी को भी आता है। ऐसा पाठ है 'अशुभ वंचनार्थ'। अस्थान से बचने को आता है, परन्तु है बन्ध का कारण।

भगवानस्वरूप आत्मा... क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है... क्रम में परिणाम उत्पन्न होगा, यह जीव ही है। आहाहा! क्रमबद्ध में स्व के आश्रय से जीव का जो (परिणाम) उत्पन्न हुआ यह जीव है, यह अजीव नहीं, अजीव से उत्पन्न हुआ नहीं, यह परिणाम की उत्पत्ति में पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। जीव ही है... भाषा है? जीव ही है... संस्कृत में है, जीव एव... जीव एव... परिणाम को जीव एव... कहा। आहाहा! क्या कहा? अपने भगवान आत्मा में समय-समय में जो क्रमबद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, ऐसा निर्णय अपने ज्ञायक द्रव्य पर (दृष्टि करने) से हुआ, तो जो परिणाम उत्पन्न हुआ वह अनन्त परिणाम व्यक्त हुआ। यह परिणाम जीव ही है। नहीं तो है तो पर्याय। जीव ही है... ऐसा कहा। है संस्कृत में? जीव एव... उस परिणाम को हम जीव कहते हैं। परन्तु यह परिणाम क्या है? द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होकर निर्मल परिणाम होता है, उस परिणाम को यहाँ जीव कहा है। समझ में आया?

रागादि होता है, परन्तु राग का ज्ञान करते हैं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात हो (तो) पकड़ा नहीं, वापस लोग (कहे), एकान्त है... एकान्त है... सोनगढ़ ऐसा कहते हैं।— (ऐसा) पुकार करते हैं। करो भाई! भगवान! तेरी चीज तो ऐसी है। प्रियंकरजी! आहाहा!

जीव ही है... अपना परिणामन उत्पन्न हुआ, जीवद्रव्य के आश्रय से जो क्रमबद्ध परिणाम उत्पन्न हुआ, (वह) जीव ही है। द्रव्य का परिणाम द्रव्य ही है। आहाहा! समझ में आया? आहा! और अजीव नहीं... नास्ति से कहा, यह अनेकान्त। अनेकान्त यह नहीं कि अपना परिणाम अपने से भी है और पर से भी है, यह अनेकान्त नहीं, यह तो एकान्त मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया?

अपना परिणाम अपने से भी है और पर से भी है, यह अनेकान्त है, ऐसा कहते हैं लोग। ऐसा है नहीं। अपना परिणाम अपने से ही है, अजीव नहीं। कर्म से नहीं हुआ, कर्म का क्षयोपशम हुआ तो जीव का परिणाम जीव के आश्रय से हुआ—ऐसा है नहीं। कर्म का क्षयोपशम हुआ तो यह परिणाम हुआ, ऐसी बात है नहीं। अपने परिणाम में कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग अब सुनना कठिन पड़े। आहाहा! यह तो वीतरागदेव त्रिलोकनाथ और वह भी दिगम्बर धर्म में ऐसी बात है। श्वेताम्बर में यह बात चलती नहीं। स्थानकवासी, श्वेताम्बर में ऐसी (बात) है नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो श्वेताम्बर, स्थानकवासी को अन्यमत में डाला है, अन्यमत में। यह पक्ष (की बात) नहीं, प्रभु! यह वस्तु का स्वरूप है। यह चीज तो... आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड जो है, (ऐसे) जब पर्याय क्रमबद्ध का निर्णय करने जाती है अपना स्वभाव-सन्मुख होकर जो परिणाम उत्पन्न हुआ यह परिणाम जीव ही है। जीव के परिणाम जीव ही है, अजीव के परिणाम अजीव ही है। ऐसा कहकर क्या कहा? अन्दर कर्म का उदय आया, यह (कर्म) मन्द पड़ गया और पीछे हट गया (और) सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई—ऐसा है नहीं। अपनी सम्यग्दर्शन की पर्याय होने में कर्म का क्षयोपशम है तो हुआ—ऐसी अपेक्षा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे! कब निर्णय करे? निवृत्ति न मिले, धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं। हम तो दुकान पर यह वाँचते थे। (संवत्) ६४-६५ के वर्ष। ६४-६५। पिताजी गुजर गये,... दुकान चलायी... पर हम तो निवृत्ति लेते थे। भागीदार बैठे हो गद्दी पर तो हम अन्दर शास्त्र वाँचते थे। वह न हो तब गद्दी पर बैठना पड़े। ६३ से ६८। आहाहा!

इसी प्रकार... अनेकान्त किया कि जो अपना—जीव का परिणाम है, वह जीव

ही है, अजीव नहीं अर्थात् अजीव से उत्पन्न हुआ नहीं अर्थात् कर्म का क्षयोपशम है तो जीव का परिणाम सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसी अपेक्षा है नहीं। क्योंकि... चर्चा बड़ी थी ईसरी में। पंचास्तिकाय की ६२ गाथा में ऐसा लिया है कि आत्मा में जो पुण्य-पाप का, दया-दान का, काम-क्रोध का विकार होता है, वह षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होता है। ६२ गाथा पंचास्तिकाय। (संवत्) २०१३ के वर्ष। २२ वर्ष पहले इसरी गये थे न? सम्मेदशिखर यात्रा। तब बड़ी चर्चा हुई थी। यह परिणाम जो होता है, वह अपने से है, पर से नहीं, कर्म से नहीं। कर्म से विकार न हो तो स्वभाव हो जाये—ऐसा प्रश्न किया सामनेवाले ने। यह स्वभाव ही है पर्याय का। आ गया है। ७२ गाथा है न? उसमें भी है। वास्तव में स्वभाव है। वह पर्याय में ... पर्याय होना, वह भी पर्याय का स्वभाव है। पर्याय का है, गुण का नहीं, द्रव्य का नहीं। आहाहा! यह पर्याय में विकार होने में पर की अपेक्षा बिल्कुल है नहीं। कर्म के कारक की अपेक्षा नहीं, ऐसा पाठ है। ६२ गाथा। विकार होने में कर्म के कारक की अपेक्षा नहीं। तो फिर धर्म की पर्याय में कोई पर की अपेक्षा है—(ऐसा है नहीं)। आहाहा!

निश्चय से तो ऐसा है कि जब जीवद्रव्य का अवलम्बन लेता है, तब वह पर्याय षट्कारक से परिणमती है। सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारक से परिणमती है। उसका अर्थ क्या है? कि पर्याय का कर्ता पर्याय है; पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। आहाहा! सूक्ष्म है थोड़ा। कर्म कहना, फिर भी पर की अपेक्षा नहीं। सम्यग्दर्शन परिणाम (स्वयं) का कर्ता है, यह षट्कारक से परिणमित हुआ है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—षट्कारक से समकित की पर्याय उत्पन्न होती है। परन्तु कर्ता में उसका लक्ष्य स्वद्रव्य पर जाता है। यह स्वतन्त्र कर्ता होकर स्व पर लक्ष्य जाता है। क्या कहा? आहाहा! ऐसा कि स्व का लक्ष्य आया तो इतनी पराधीनता—अपेक्षा हुई या नहीं? कि नहीं। यह सम्यग्दर्शन की पर्याय षट्कारक से उत्पन्न होती है, उसमें पर की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु द्रव्य-गुण की भी नहीं। समझ में आया?

यह द्रव्य-गुण की (अपेक्षा) नहीं, पर्याय है तो (कोई) कर्ता तो है? किसका कर्ता? कि अपनी पर्याय का। अपनी पर्याय का कर्ता है, वह स्वतन्त्रपने स्व के लक्ष्य में

जाता है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान की धर्म की परिणति—पर्याय कर्ता होकर स्वतन्त्र होती है और कर्ता होकर स्व पर लक्ष्य जाता है... कर्ता होकर स्व पर लक्ष्य जाता है। आहाहा! ऐसा कि स्व का आश्रय करे तो (इतनी) पर्याय की पराधीनता है—ऐसा है नहीं। कहने में आता है 'भूदत्थं मस्सिदो खलु समाहिती हवदि जीवो...' (समयसार) ११वीं गाथा। भगवान पूर्णानन्द का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? तथापि यहाँ कहते हैं कि आश्रय करने में भी यह पर्याय स्वतन्त्र होकर आश्रय करती है। आहाहा! (स्व) पर लक्ष्य गया, इसलिए पर्याय पराधीन हुई—ऐसा है नहीं। आहाहा! अब ऐसी बात बैठना कठिन जगत को। यह तीन लोक के नाथ वीतराग परमात्मा की दिव्यध्वनि—ओमकार ध्वनि है। 'ओमकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे...' और आगम रचे। 'रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, जीव ही है, अजीव नहीं... यह अनेकान्त है। जीव का परिणाम अपने से भी होता है और पर से भी होता है (—ऐसा नहीं)। आता है तत्त्वार्थराजवार्तिक में (कि) दो कारण से कार्य है। तत्त्वार्थराजवार्तिक में है। उपादान और निमित्त... निमित्त है, उसका ज्ञान कराया। निमित्त से होता नहीं, परन्तु निमित्त है, उसका ज्ञान कराया। दो कारण से कार्य, ऐसा पाठ है। यहाँ तो एक ही कारण कहा। आहाहा! अकलंकदेव भी कहते हैं कि दो कारण से कार्य है अथवा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा आया है, पूर्व पर्याय युक्तं द्रव्य उपादानं... पूर्व पर्याय युक्तं द्रव्य उपादानं... उत्तर पर्याय युक्त द्रव्य उपादेय। उपादान कारण है और उपादेय कार्य है। पहली पर्याय उपादान कारण है और पीछे की पर्याय (कार्य है)—यह सद्भूत व्यवहारनय से कथन है, निश्चय से नहीं। आहाहा! निश्चय से तो यह (वर्तमान) पर्याय पूर्व की पर्याय से भी उत्पन्न हुई नहीं। पूर्व की पर्याय का तो व्यय होकर उत्पन्न होती है, तो उत्पन्न होने में आश्रय तो त्रिकाली द्रव्य का है। आहाहा! कठिन बात है।

नियमसार में पाठ है कि अज्ञानी को 'सततं सुलभं'... यह सामग्री मिलती है 'सततं सुलभं'—सहज में मिलती है, ऐसे सुलभ है। ज्ञानी को आत्मा मिलता है 'सततं

सुलभं'। (कलश १७६)। दो पाठ हैं नियमसार में। आलोचना अधिकार के अन्त में है और पहले अधिकार में है। मिथ्यादृष्टि को ये बाह्य सामग्री सुलभ है। (कलश ३०)। लक्ष्य करता है कि मुझे पैसा मिला, शरीर मिला। धूल भी मिलती नहीं, यह तो पूर्व के पुण्य से मिलती है। एक ओर भगवान, मुनि ऐसा भी कहे कि मिथ्यादृष्टि को सामग्री मिलनी दुर्लभ है—ऐसा कहे। क्यों? उसके पुरुषार्थ के आधीन नहीं, पूर्व के पुण्य के आधीन है, इसलिए दुर्लभ कह दिया। एक ओर सुलभ कहा। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जीव का परिणाम जीव का है, अजीव से नहीं, कर्म से नहीं अथवा देव-गुरु-शास्त्र से भी नहीं। अपने द्रव्य के अवलम्बन से अपना परिणाम जो हुआ है, यह परिणाम देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से भी नहीं। आहाहा! अजीव से नहीं अर्थात् इस जीव से (भिन्न) दूसरे सब जीव। यहाँ तो अजीव में कर्म लिया, नहीं तो ये जीव, जीव है और इसकी अपेक्षा से दूसरे सब जीव अजीव हैं। आहाहा! समझ में आया? ये द्रव्य, द्रव्य है, इसकी अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु का एक-एक बोल समझना, आहाहा! यह अलौकिक बातें हैं। यह समझ में आ गया तो भव का अन्त आ गया। आहाहा! उसको भव नहीं। यहाँ कहते हैं, अजीव नहीं...

इसी प्रकार अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से... भाषा देखो! शरीर में भी पर्याय क्रमबद्ध होती है, आत्मा से नहीं। ऐसे हिलता है, यह क्रमबद्ध होने की योग्यता से हुआ है। समझ में आया? पहले ऐसा था, अब ऐसा हुआ। यह अजीव की पर्याय क्रमबद्ध से होनेवाली हुई है, आत्मा की इच्छा से नहीं, आत्मा से नहीं। आहाहा! अजीव भी... 'अजीव भी' क्यों कहा? कि पहले जीव की बात की थी न? इसलिए अजीव भी, ऐसा। क्रमबद्ध... उसमें भी क्रमबद्ध है। आहाहा! यह मकान होने की परमाणु की पर्याय क्रमबद्ध में हुई है। आहाहा! मन्दिर बनता है तो परमाणु की पर्याय क्रमबद्ध में होनेवाली है, उससे बनता है। कारीगर (और) प्रमुख उसका बनानेवाला नहीं है। आहाहा! गजब सूक्ष्म बातें हैं।

अजीव भी क्रमबद्ध... सबमें क्रमबद्ध है न? आहाहा! यह भाषा निकलती है वह भी क्रमबद्ध पर्याय से भाषा आती है, आत्मा से नहीं। आहाहा! आत्मा बोलता नहीं और बोलती भाषा की पर्याय का आत्मा कर्ता नहीं। आहाहा! अजीव भी क्रमबद्ध... आहाहा! शरीर, वाणी, मन, (आदि) बाह्य पुद्गल (और) आत्मा के अतिरिक्त सब अजीव उनके परिणाम क्रमबद्ध—क्रम से होनेवाले हैं और क्रम से होते हैं। आहाहा! कोई कहे कि परमाणु को सुधार दूँ... समझ में आया? आहाहा! कच्ची सब्जी में से पक्की सब्जी होती है, यह अग्नि से नहीं। क्रमबद्ध में आनेवाली पर्याय से अजीव का परिणाम हुआ है और अजीव का परिणाम, यह अजीव है। तवे से और स्त्री से रोटी हुई, सब्जी पक्की हुई—ऐसा है नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ कृष्ण १४, रविवार, दिनांक-२२-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-२

समयसार, ३०८ से ३११ गाथा की टीका। एक पंक्ति कल चली है। फिर से प्रथम तो जीव... 'तावत्' शब्द पड़ा है, संस्कृत में। संस्कृत (टीका) में 'तावत्' शब्द पड़ा है। 'जीवो हि तवत्' संस्कृत में है। अमृतचन्द्राचार्य। सूक्ष्म बात है। यह बात अभी कठिन पड़े लोगों को। क्या? एक तो अपनी पर्याय पर से तो होती नहीं और अपनी पर्याय आगे-पीछे होती नहीं। समझ में आया? ऐसे प्रत्येक पदार्थ में... यह तो अभी जीव पर (उतारते हैं)। जीव में जो पर्याय होती है, यह पर से तो होती नहीं, परन्तु वह पर्याय आगे-पीछे होती है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! यह क्रमसर में... 'जं गुणेहि' 'गुण' शब्द (का अर्थ) यहाँ पर्याय है। द्रव्य जो पर्यायों से उत्पन्न होता है, वह उसका स्वकाल है। समझ में आया? क्रमबद्ध का वही अर्थ है कि जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है, दूसरे समय में जो पर्याय उत्पन्न होती है—यह क्रमनियमित है। अकेला क्रम नहीं, क्रम और निश्चित। क्रम से तो होती है, परन्तु निश्चित अर्थात् जो पर्याय होती है, वही होती है। आहाहा!

तो ऐसे जीव क्रमबद्ध... 'क्रमबद्ध' (शब्द) कैसे निकाला? कि क्रमनियमित। क्रम का अर्थ क्रम निकाला और 'नियमित' का अर्थ बद्ध निकाला। क्रमबद्ध। ये क्रमबद्ध निकाला कहाँ से? कि 'जं' जो गुण अर्थात् जो पर्याय... होती है, वहाँ से निकाला। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य में अपने स्वकाल में अपनी पर्याय जो उत्पन्न होनेयोग्य है, उससे उत्पन्न होती है। अभी तो रतनचन्द्रजी आदि कितने (पण्डित) ऐसा कहते हैं, आत्मद्रव्य में उपादान की योग्यता अनेक प्रकार की है। जैसा निमित्त आये ऐसी पर्याय हो। योग्यता अनेक प्रकार की है। यहाँ यह कहते हैं कि ऐसा है नहीं। जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उसी प्रकार की उसकी योग्यता है। आहाहा! समझ में आया? उपादान में अनेक प्रकार की उत्पन्न होने की (योग्यता है)। जैसे जल सफेद है, (उसमें) रंग काला डालो तो काल हो जाये, नीला डालो तो नीला हो जाये। उपादान में अनेक योग्यता है, जैसा निमित्त मिले ऐसा हो, नहीं? ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो

मुद्दे की रकम की बात है। प्रत्येक द्रव्य... यहाँ तो अपना जीवद्रव्य लेना है। जीव है... यह जो जीवद्रव्य है... 'द्वियं'.. जो द्रव्य है, यह तो 'द्वियं' (अर्थात्) द्रव्य द्रवता है। जिस पर्याय से द्रव्य उत्पन्न होता है, उस पर्याय से ही उत्पन्न होगा और वह पर्याय उसका कार्य और द्रव्य उसका कर्ता कहने में आता है। द्रव्य को कर्ता कहने में आता है, परन्तु वास्तव में द्रव्य कर्ता नहीं है। वास्तव में तो पर्याय कर्ता और पर्याय कार्य है, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं लेना है।

यहाँ मात्र, जिस समय में जो द्रव्य की पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह होगी। उसका तात्पर्य क्या? ऐसा कहने में और ऐसे भाव में तात्पर्य क्या है? १७२ गाथा पंचास्तिकाय में लिखा है। कार्य उसका तात्पर्य क्या? कि वीतरागता। पंचास्तिकाय की १७२ गाथा है। तो यह 'क्रमबद्ध' का तात्पर्य क्या? जो द्रव्य जिस पर्याय से उत्पन्न होता है, उसका तात्पर्य वीतरागता है। (उसका) तात्पर्य कैसे वीतरागता होती है? कि जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, उसका अगर निर्णय करता है तो राग आदि का अकर्ता हो जाता है। अकर्ता होता है... यहाँ अकर्ता(पना) सिद्ध करना है। ऊपर शब्द पड़ा है। 'आत्मनो अकर्तृत्वं द्रष्टांत पुरस्सरम् आख्याति...' संस्कृत पाठ में यह है। अकर्तृत्व सिद्ध करना है, उसमें क्रमबद्ध आया है।

जो पर्याय जिस समय में होगी... आहाहा! उतना बहुत भाग नहीं लिया है। 'पर की सत्ता में' ऐसा लिया है। खबर है। परन्तु अन्तर में—गर्भ में इतनी बात निकाली है... जिस समय में जिस द्रव्य की जैसी पर्याय होती है, उसका तात्पर्य क्या? उसका फल क्या? यह क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करने जाता है, तो पर्याय के आश्रय से क्रमबद्ध का निर्णय नहीं होता। उसका निर्णय पर्याय में पर्याय के आश्रय से नहीं होता। उसका तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता पर्याय में (उत्पन्न करनी) है तो पर्याय के आश्रय से वीतरागता उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! वीतरागता तात्पर्य है, (परन्तु) वीतरागता उत्पन्न कैसे होती है? कि वीतरागस्वरूप आत्मा है... 'घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन, मत मदिरा के पानसों मतवाला समझे न। घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन।' जिन क्यों कहा, अन्तर जैन? कि बाहर में चक्रवर्ती का छह खण्ड का राज्य भी

हो, ९६ हजार स्त्रियाँ हों, करोड़ों अप्सराएँ देव को हो... जैनपना अन्तर में है। अन्तर में क्या? 'घट घट अंतर जिन बसे।' जो जिनस्वरूपी भगवान आत्मा है, उस ओर का यहाँ लक्ष्य और आश्रय करने जाते हैं तो पर्याय में वीतराग सम्यग्दर्शन होता है। यह जैनपना घट में है। इस जैनपने का कोई बाह्य त्याग में उसका प्रमाण करने जाये तो मिले नहीं। छह खण्ड का राज्य हो, ९६ हजार स्त्रियाँ हों, ९६ करोड़ सैनिक हों, तथापि सम्यग्दर्शन है। घट घट में जिन और घट घट में जैन है। आहाहा!

यह जिनपना जो वस्तु का स्वरूप है, वह वीतरागस्वभावी आत्मा है। त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है, शुद्ध है, परमपारिणामिकभाववाला निज द्रव्य है। आहाहा! यह निज द्रव्य पर दृष्टि करने से... निज द्रव्य वीतरागस्वरूप है, परन्तु उस पर दृष्टि करने से वीतरागीपर्याय उत्पन्न होती है। तो उसमें से बहुत निकाल दिया। निमित्त से वीतरागता हो, व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय हो—यह बात निकाल दी। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय दया, दान, पूजा, भक्ति के परिणाम उससे सम्यग्दर्शन होता है, यह बात निकाल दी। आहाहा! और करनेवाला भी आगे-पीछे कर (सकता है), यह बात निकाल दी। समझ में आया? तथापि शास्त्र में ऐसा पाठ आवे कि इस जीव को थोड़े-अचिर काल में केवलज्ञान लिया। 'अचिरम्'—विशेष नहीं, अल्प काल में लिया। परन्तु उसका अर्थ क्या? कि जिसकी दृष्टि द्रव्य ज्ञायक पर पड़ी है, जिसको जिनस्वरूप की दृष्टि का अनुभव हुआ, उसको केवलज्ञान पाने का काल ही अल्प है। क्रमसर तो आयेगा। समझ में आया? आहाहा!

षट्खण्डागम में तो ऐसा उल्लेख है कि जब मति और श्रुतज्ञान में सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु का जहाँ अनुभव हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ, मति-श्रुतज्ञान। आहाहा! वह मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है—ऐसा पाठ है, षट्खण्डागम में। आहाहा! क्या कहते हैं? यह मति-(श्रुत)ज्ञान, जो समय में जो पर्याय होती है, ऐसा निर्णय करने जाता है तो वीतरागीस्वरूप भगवान आत्मा पर दृष्टि जाती है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! और वीतरागभाव उत्पन्न होता है, तो कोई ऐसे कहता है कि चौथे गुणस्थान में तो समकित सराग ही होता है, वीतराग समकित नहीं होता। ऐसा कहते हैं, यह झूठ है। क्योंकि

क्रमबद्ध का तात्पर्य वीतरागता है और वीतरागता, वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा उसके आश्रय से होती है। चौथे गुणस्थान में समकित वीतरागीपर्याय है। पण्डितजी! आहाहा! समझ में आया? वह तो (साथ में रहे हुए) राग की अपेक्षा से समकित को सराग कहा है, (परन्तु) समकित सराग नहीं है। राग का (पूर्ण) अभाव नहीं किया, (पूर्ण) वीतराग नहीं हुआ, उस अपेक्षा से समकित को सराग समकित कहा। समझ में आया?

तत्त्वार्थसूत्र में भी (आता है कि) जब स्वर्ग का आयुष्य बँधता है तो सरागसंयम से बँधता है। ऐसा पाठ आता है तत्त्वार्थसूत्र में। सरागसंयम। और सातावेदनीय बँधता है तो सरागसंयम से बँधता है—ऐसे दो पाठ हैं। देखो! तत्त्वार्थसूत्र में है। उमास्वामी। समझ में आया? यह सरागसंयम कहने में आया, यह संयम सराग(रूप) नहीं है। संयम तो अन्तर वीतरागी पर्याय, यह ही संयम है। परन्तु साथ में आयुष्य बँधने का कारण राग था, उस राग की (अपेक्षा से) सरागसंयम कहा। आहाहा! राग वह संयम है नहीं। आहाहा! इसी प्रकार समकित में भी सराग समकित कहा है। वह तो राग के दोष को (पूर्णतया) निकाला नहीं, इस अपेक्षा से कहा है। परन्तु सम्यग्दर्शन जो है, वह वीतरागीपर्याय है। क्रमबद्ध में वह आता है। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय (होनेवाली है, वह होगी), आगे-पीछे करना वस्तु की मर्यादा में है नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है कि आगे-पीछे पर्याय होना, यह वस्तु की स्थिति नहीं। यह आगे-पीछे नहीं होती और जब हुई है, उसका जब ज्ञान यथार्थ होना (-करना) है तो यथार्थ ज्ञान कब होगा? क्रमबद्ध में जो पर्याय आयी है, उसका यथार्थ ज्ञान कब होगा? कि जो वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है, उसका—स्व का ज्ञान होगा, तब पर्याय का ज्ञान होगा। आहाहा! समझ में आया?

हम कहते हैं न? कहा था न? कल कहा था। हमारे ७२ के वर्ष में प्रश्न उठा था। (संवत्) १९७२। ६३ वर्ष हुए। ६० और ३। बड़ा प्रश्न उठा था सम्प्रदाय में। ७० में दीक्षा और ७२ में तो... ७० से वह कहते थे। हम तो सुनते थे। नवदीक्षित थे। २३ वर्ष में दीक्षा ली थी। दो वर्ष दीक्षा के हुए बाद में बाहर प्रगट किया। वह लोग ऐसे कहते ऐसे थे कि केवलज्ञानी ने देखा ऐसा होगा। यह तो भगवतीदास भी कहते हैं कि 'जो जो

देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।' आता है ? परन्तु उसका तात्पर्य क्या ? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा, ऐसा होता है, तो वीतराग सर्वज्ञ जगत में 'हैं' ऐसी सत्ता का स्वीकार है पहले ? इस सत्ता का स्वीकार (हो), पश्चात् 'देखा, ऐसा होगा' यह बाद की बात। लालचन्द्रभाई ! यह तो ७२ में चलती थी बात बड़ी। गुरु नरम थे, उन्होंने तो मेरी बात स्वीकार ली। परन्तु गुरुभाई थे, वे बहुत विरोध करते थे। आत्मा बिल्कुल पुरुषार्थ कर सकता नहीं। सर्वज्ञ ने देखा, तब होगा। प्रभु ! वीतराग की वाणी में यह सार आया है ? वीतराग की वाणी जब सुनी, उसमें ऐसा आया कि तेरी पर्याय में जब वीतराग पर्याय होगी, वह पर्याय के काल में—स्वकाल में होगी। स्वकाल में होगी, ऐसा जब पर्याय का निर्णय करते हैं, तब त्रिकाली वीतराग का निर्णय करते हैं, तब स्वकाल में वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! आहाहा ! शास्त्र तो गहन है, यह कोई साधारण शब्द नहीं।

कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), दवियं जं... गुणेहिं... दवियं जं... गुणेहिं... बस इतने में से निकाला है सार। आहाहा ! भाई ! दवियं जं... गुणेहिं... गुण अर्थात् पर्याय लेना। गुण कब उत्पन्न होता है ? पाठ तो यह है न ? कि 'दवियं जं उपज्जइ गुणेहिं' है न ? द्रव्य में जिस प्रकार से पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह उत्पन्न होती है। उसमें से अमृतचन्द्राचार्य ने 'क्रमनियमित' (शब्द) निकाला। यहाँ परमात्मा... परमात्मा कहते हैं, वह ही सन्त कहते हैं। समझ में आया ? जो समय में जो गुण की, द्रव्य की पर्याय उत्पन्न (होनेवाली) है वह होगी, ऐसा उसमें है। तो क्रमनियमित है। क्रम में तो थी, परन्तु नियमित अर्थात् जो पर्याय वह होनेवाली है, वही होगी। बड़ी चर्चा हुई थी १३ के वर्ष में इसरी में। यह चर्चा (संवत्) १९७२ में हुई थी, सम्प्रदाय में (कि) केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा होगा, अपने क्या पुरुषार्थ करे ?

सुन ! इस जगत में केवलज्ञान एक समय की पर्याय है, वह तीन काल—तीन लोक को छुए बिना जानती है—ऐसी एक (समय) की पर्याय की सत्ता का सामर्थ्य है। ऐसी सत्ता के सामर्थ्य की प्रतीति है पहली ? उसने देखा ऐसा होगा, यह बाद की बात। एक समय की पर्याय का इतना सामर्थ्य है, ऐसा जो निर्णय करते हैं, यह पर के

(आश्रय) से, पर्याय के आश्रय से निर्णय नहीं होता। पर के आश्रय से तो नहीं होता, परन्तु पर्याय के आश्रय से यह निर्णय नहीं होता। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग। आहाहा! यह तो हम कर दे, मन्दिर बना दे, ऐसा बनाना... कौन बनावे? प्रभु! यह तो पर्याय के काल में 'दवियं जं उपज्जइ' अपनी पर्याय के काल में उत्पन्न हुआ है, (उस) मन्दिर को कौन बनावे? प्रतिमा को कौन वहाँ स्थापे? आहाहा! समझ में आया? शुभभाव आ जाता है, तो शुभभाव में (क्रिया) निमित्त कहने में आती है (और) वह क्रिया में शुभभाव निमित्त कहने में आता है। शुभभाव से वह हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि क्रमबद्ध का जब निर्णय करते हैं (अर्थात्) केवली ने देखा (ऐसा होगा) ऐसा निर्णय करते हैं, तो उसके निर्णय में, पर्याय ज्ञानस्वरूपी प्रभु में घुस जाती है। त्रिकाली ज्ञान हूँ, सर्वज्ञ हूँ... 'सर्वज्ञ हूँ' ऐसा निर्णय करने में मैं सर्वज्ञ पूर्ण हूँ... आहाहा! अल्पज्ञ के आश्रय से सर्वज्ञ का सच्चा निर्णय नहीं होता। बाहर का निर्णय होता है... (प्रवचनसार) ८० गाथा में आता है, 'जो जाणदि अरहंतं दव्वतगुणपज्जय' यह व्यवहार है। अरिहन्त के द्रव्य, गुण, पर्याय जानना, यह तो व्यवहार है और यह पर्याय का निर्णय करना, यह भी विकल्प है—राग है। आहाहा! परन्तु अपना स्वरूप... वे सर्वज्ञ हैं, यह सर्वज्ञपना आया कहाँ से? सर्वज्ञ उनका स्वभाव है, 'है' उस प्राप्त की प्राप्ति है। है, कुँआ में है, यह अवेडा में... 'अवेडा' को क्या कहते हैं? हौज। पानी आता है न? कुँआ में हो, वह हौज में आता है। इसी प्रकार अन्दर में हो वह बाहर आता है। आहाहा!

भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु आत्मा त्रिकाली अनादि-अनन्त है, उसे आवरण भी नहीं, अपूर्णता भी नहीं, विरोधता नहीं, विपरीतता नहीं। आहाहा! ऐसा सर्वज्ञस्वभावी भगवान (आत्मा), उसके ऊपर जब दृष्टि जाती है तो पर्याय में—सम्यग्दर्शन और वीतरागीपर्याय में सर्वज्ञ का निर्णय हुआ, तब साथ में तीर्थकर आदि का सर्वज्ञपना व्यवहार से निश्चय में (-निर्णय में) आया... व्यवहार से निर्णय में आया। निर्णय में यह आया? समझ में आया?

परद्रव्य का सर्वज्ञपना परद्रव्य का ही है और परद्रव्य का लक्ष्य करने से विकल्प उठता है। सर्वज्ञ हैं, ऐसा निर्णय करते ही विकल्प उठता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, यह अन्तर्दृष्टि... जो वीतरागस्वभाव है, वह सिद्ध करना है। वीतराग प्रभु अन्दर तुम हो, तो जिस समय में तेरी (वीतरागी) पर्याय उत्पन्न होती है, उस उत्पत्ति का निर्णय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव का निर्णय करने से होता है। आहाहा! यह गजब की बात है! बात ऐसी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा का यह फरमान है, भाई! उन्होंने ऐसे कहा कि हम सर्वज्ञ हुए, वह कहाँ से हुए? पर्याय में से सर्वज्ञपर्याय आयी है? प्रवचनसार में आता है न? ज्ञान को कारणरूप से ग्रहणकर... आता है। प्रवचनसार (गाथा २१) की टीका में। त्रिकाली ज्ञान को कारणरूप ग्रहणकर... ऐसा पाठ है। प्रवचनसार में है। त्रिकाली ज्ञान को ज्ञायकभाव को कारणरूप ग्रहणकर... आहाहा! उसको कार्य—सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! यह भी यहाँ आया।

जब जीव मुख्य... प्रथम का अर्थ तावत्... तावत् का अर्थ मुख्य। मुख्य मुझे यह कहना कि और वस्तु की मर्यादा भी यह है कि तावत्... जीव क्रमबद्ध... क्रमसर जो परिणमन होनेवाला है, वो होगा। समझ में आया? यह चर्चा १३ के वर्ष में बहुत हुई थी वर्णीजी के साथ। वह कहते थे कि क्रमबद्ध है सही, परन्तु इसके पीछे ये ही होगी, ऐसा नहीं, गमे वह पर्याय हो। कहा, ऐसा नहीं। जो समय में जिस पर्याय के पीछे जो आनेवाली है, वही आयेगी, दूसरी नहीं (क्योंकि) आगे-पीछे (क्रम होता) नहीं। बड़ी चर्चा हुई थी इसरी में १३की साल में। सब थे—रामजीभाई थे, हिम्मतभाई थे, भाई थे इंदौरवाले बंसीधरजी। ... न बैठी इनको। और यह कहा कि आत्मा में विकार होता है, वह षट्कारक के परिणमन से अपने से होता है। कर्म के कारण से नहीं और अपने त्रिकाली द्रव्य में, गुण में तो विकार होने की योग्यता है ही नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली शुद्ध पवित्र हैं। हैं गुण अनन्त, परन्तु सब पवित्र हैं। पवित्र गुण अपवित्रता को करे, ऐसा होता ही नहीं। समझ में आया? पर्याय में जो अपवित्रता होती है, वह गुण से नहीं। ये निमित्त के वश होता है अपने से, निमित्त से नहीं। निमित्त से नहीं, निमित्त के वश होकर पर्याय में विकार करता है, यह विकार(रूप) परिणमन पर्याय में षट्कारक से होता है। पर कारण से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं। आहाहा!

विकार षट्कारक से (होता है)—राग कर्ता, राग कार्य, राग साधन, राग सम्प्रदान, राग अपादान और राग आधार... जब विकार में ऐसा है तो निर्विकारी पर्याय में कहाँ (पर का अवलम्बन रहा) ? आहाहा! निर्विकारी पर्याय जो धर्मपर्याय है—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षमार्ग, वह पर्याय भी षट्कारक से अपने से परिणमती है। आहाहा! समझ में आया ? उसको द्रव्य-गुण की अपेक्षा भी नहीं। उसको व्यवहार की अपेक्षा तो नहीं कि अच्छा व्यवहार है तो निश्चय होगा।—ऐसी बात तो है ही नहीं। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न होता है, वह अपना त्रिकाल द्रव्यस्वभाव जो ज्ञायकभाव है, उसके अवलम्बन से होता है। वह भी अपेक्षित बात है। बाकी तो पर्याय कर्ता, पर्याय करण आदि पर्याय के षट्कारक पर्याय से है। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई! इस एक लाइन में बहुत भरा है। यह तो सिद्धान्त हैं, यह कोई वार्ता नहीं है, कथा नहीं है। आहाहा!

केवली ने देखा, ऐसा (होगा)—ऐसा निर्णय होने में केवलज्ञान का निर्णय करना पड़ेगा। केवलज्ञान की जगत में सत्ता है, (ऐसा) स्वीकार करे, तब उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। आहाहा! ये क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, आहाहा! तब उसका तात्पर्य द्रव्यस्वभाव पर जाता है। समझ में आया ? आहाहा! और प्रवचनसार में ४७ नय लिये हैं। काल में भी मोक्ष और अकाल में भी मोक्ष—ऐसा पाठ आता है। समझ में आया ? ४७ नय हैं। काल मोक्ष और अकाल मोक्ष—दोनों ही बात हैं। जो क्रमबद्ध है (तो) अकाल में मोक्ष कहाँ से आया ? उसका अर्थ दूसरा है। 'अकाल में मोक्ष' का अर्थ यह ही काल—समय में मोक्ष होता है, यह उसकी पर्याय आनेवाली है, उस समय होती है। परन्तु अकाल (शब्द) क्यों लिया ? कि स्वभाव और पुरुषार्थ को साथ में लेना है। अकेला क्रमबद्ध (न लेकर) साथ में पुरुषार्थ और स्वभाव लेना है। समझ में आया ? पाँच समवाय साथ में लेना है, तो काल के अतिरिक्त दूसरे चार समवाय जोड़कर अकाल कहने में आया है। आहाहा! परन्तु अकाल का अर्थ ऐसा नहीं कि... आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बात है।

आहाहा! अरे रे! ऐसा मनुष्यपना मिला, अरे! मुश्किल (धर्म) करने का अवसर

आया। अवसर अब आ गया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने लिखा है, 'सब अवसर गया है।' ऐसा पाठ है। आहाहा! तेरी नींद खोल दे। जागृत हो जा नाथ! प्रभु! तेरी शक्ति तो अनन्त... अनन्त गुण से भरी पड़ी है। आहाहा! उसको जगा दे। तू नींद में सोता है। आहाहा! अपने स्वरूप की खबर नहीं और राग आदि को अपना मानते हैं, यह सब प्राणी असाध्य में हैं। असाध्य में हैं। मरते असाध्य हो जाते हैं न? यह तो जीते जी असाध्य है। साध्य जो त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, आहाहा! उसकी दृष्टि नहीं, उसका अनुभव नहीं, उस ओर का आश्रय नहीं और राग का आश्रय है, व्यवहार का आश्रय है, वे सब अन्धे हैं।

ये पाठ है। 'आसंसारत्' हे अन्धा... समयसार में निर्जरा अधिकार है न? 'आसंसारत्' हे अन्धा... 'भो अन्धा' ऐसा लिया है। है? (निर्जरा अधिकार की) अन्तिम गाथा। निर्जरा अधिकार है न? 'आसंसारत्' नहीं है? कलश १३८। 'आसंसारत्प्रति-पदमीतद्विबुध्यध्वम् रागिणी नित्यमन्ता' अन्धा... सुप्ता... है न? ओहोहो! सम्बोधन करते हैं कि हे अन्ध! अन्धा है न? आहाहा! 'तद्विबुध्यध्वम् अंधा' दूसरी लाईन। 'अन्धा' शब्द है। हे अंधे! आहाहा! तूने सब देखा, परन्तु तेरी चीज़ नहीं देखी तो तू बन्धा है। आहाहा! है? 'अन्धा' सम्बोधन है। हे अन्ध प्राणियों! आहाहा! अरे! जो देखने की चीज़ थी, उसे तो देखी नहीं, जाननेवाले को जाना नहीं, देखनेवाले को देखा नहीं, आहाहा! और जानने में जो चीज़ आती है, उसको जानकर भटका। वास्तव में ये चीज़ को जानता नहीं, वास्तव में तो अपनी पर्याय को जानता है। पर को जानता नहीं, पर (को जानना), यह तो असद्भूत व्यवहारनय से कहने में आता है। आहाहा! पर को जाननेवाली पर्याय अपने में अपने से अपने को जानती है, परन्तु वो पर्याय को जानता है। आहाहा! समझ में आया?

वह पर्याय तो अंश है (और) भगवान अंशी त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! शुद्धस्वभाव से पूर्ण भरा पड़ा भगवान है। आहाहा! हे अन्ध! वहाँ नजर कर। आहाहा! पर्याय में राग, दया, दान, व्रत में रुका तो भी यहाँ तो अन्धा कहते हैं। अन्धे है, तुम अन्धे हो। तेरी चीज़ राग से भिन्न अन्दर पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु है,

सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द के जल से भरा सागर है, ज्ञान और आनन्दरूपी जल से भरा सागर है, आहाहा! प्रभु! वहाँ तेरी नजर (कर)। क्रमबद्ध में यह है। समझ में आया? क्रमबद्ध में जिस समय में जो (पर्याय) होगी, जिस समय में जो होगी, तो (क्या) उसके (-पर्याय के) सामने देखना है? समझ में आया? यहाँ तो अकर्तापना, ज्ञातापना सिद्ध करना है। पाठ तो यह आया कि अकर्तापना सिद्ध (करना है)। अकर्ता कहो या ज्ञाता कहो। ज्ञाता भगवान सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु, सर्वदर्शी अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण नाथ है—ऐसा निर्णय करता है तो उसको सम्यग्दर्शन होता है। यह बात है भाई! इसके बिना सब शून्य है, एक बिना के शून्य। क्या कहते हैं? एक बिना के शून्य। आहाहा! यहाँ कहते हैं... यहाँ अन्धा शब्द... की बड़ी बात चलती है। अब जो यहाँ अपना (अधिकार) चलता है।

‘क्रमबद्ध’ आया न? जीव क्रमबद्ध... आहाहा! इसमें पुरुषार्थ उड़ जाता है, पुरुषार्थ करने का रहता नहीं—ऐसे मानते हैं। भविष्य में जो समय में जो पर्याय होगी, वो होगी, इसमें हम क्या कर सके? परन्तु उसका निर्णय करने में तेरा पुरुषार्थ स्वभावसन्मुख जाता है, तब क्रमबद्ध का निर्णय होता है। आहाहा! समझ में आया? हमारे ७२ से यही चर्चा निकाली थी पहली। ६४ वर्ष हुए। बाहर में गुरु बैठे थे। गुरु भी सुनते थे। कर्म से विकार कभी तीन काल में होता नहीं। ७१ के वर्ष। तुम्हारे जन्म से पहले। (व्याख्यान) करने की शुरुआत की दोपहर को। सुबह में तो मेरे गुरु वाँचते थे। प्रोषध आदि करे और प्रोषध? प्रोषध आदि करे तो दोपहर बैठे हो। तो कहे, कानजीस्वामी वांचे... वांचते थे तो ये कहा कि कर्म से आत्मा... क्योंकि कर्म परद्रव्य है। परद्रव्य से अपने में विकार होता है... परद्रव्य से विकार होता है, यह तो तीन काल में होता नहीं। परद्रव्य अपने को कभी छूता ही नहीं। समझ में आया?

परद्रव्य कभी अपने को छूता नहीं। यह तीसरी गाथा में है समयसार। समयसार तीसरी गाथा। प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायरूपी धर्म को चूमता है, परन्तु परद्रव्य की पर्याय को कभी छुआ ही नहीं, चूमा नहीं, स्पर्शा नहीं। ‘अडया नहीं’ को क्या कहते हैं? छुआ नहीं। कर्म को आत्मा छुआ ही नहीं और कर्म आत्मा को छुआ नहीं। आहाहा!

तेरे अपराध से तेरे में मिथ्या-भ्रान्ति और राग-द्वेष तेरे से उत्पन्न होता है, कर्म से नहीं। वह मिथ्या-भ्रान्ति और विकार का नाश करना हो, मेरे में है नहीं—ऐसा निर्णय करना हो, तो उसको ज्ञायक की ओर जाना पड़ेगा। आहाहा! प्रियंकरजी! यह शास्त्र... पण्डितपना यह है। पण्डिताई की बातें सब करे, परन्तु मूल चीज तो... आहाहा! ११ अंग भी पढ़ डाले अनन्त बार। एक अंग में अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। ऐसा ११ अंग कण्ठस्थ किया, उसमें क्या आया? वह (ज्ञान) तो परज्ञेयनिष्ठ है। यह शास्त्र का ज्ञान परज्ञेय है। ज्ञेय पर है, उसके ज्ञान में निष्ठ है। वह स्वज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वचनामृत में आता है, बहिन के वचनामृत में। शास्त्र का ज्ञान परज्ञेयनिष्ठ है। अन्दर आता है। अपना ज्ञेय ये नहीं। आहाहा! जब निर्णय क्रमबद्ध का करते हैं—जो समय में जो पर्याय होगी, वह होगी उसका निर्णय करते हैं, तो अपने अन्तर में झुकता जाता है, दृष्टि का विषय आत्मा हो जाता है। दृष्टि का विषय क्रमबद्धपर्याय नहीं रहती। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जरा समझना कठिन पड़े। हमारे पण्डितजी कहते हैं न कि मुद्दे की रकम है। मूल बात है, यह। आहाहा! यह तो प्रतिमा ले लो, यह ले लो। धूल में है नहीं तेरी प्रतिमा। प्रतिमा कहाँ से आयी? सम्यग्दर्शन की तो खबर नहीं और सम्यग्दर्शन कैसे होता है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! क्रमबद्धपर्याय होती है, उसमें आगे-पीछे करने की इन्द्र, नरेन्द्र और जिनेन्द्र की ताकत है नहीं। तू आगे-पीछे कर दे पर्याय को और धर्म हो जाता है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! भाषा तो सादी है न, प्रभु! भाषा कोई ऐसी बहुत कठिन नहीं संस्कृत, व्याकरण... भाषा तो सादी है। प्रभु सादा है अन्दर। निरावरणस्वरूप परमात्मस्वरूप पूर्ण पड़ा है, उसका आश्रय लेने से क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय होता है। क्रमबद्ध का निर्णय करने में स्व का आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन की पर्याय—भव के अन्त की पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया?

यह कहा, जीव क्रमबद्ध... 'जं गुणोहिं' उसका अर्थ निकाला। जो पर्याय से उत्पन्न होता है... यह अपने परिणामों से... यहाँ वापस, ये परिणाम अपने द्रव्य का है, ऐसा कहना है। दूसरी जगह कहे कि परिणाम जो है, वह आत्मद्रव्य का है ही नहीं।

पर्याय, पर्याय की है, द्रव्य द्रव्य का है। क्योंकि दो वाच्य है... दो वाचक है तो अन्दर दो वाच्य है। तो वाच्य दोनों ही स्वतन्त्र हैं। पर्याय भी स्वतन्त्र है और द्रव्य भी स्वतन्त्र है। आहाहा! यहाँ तो पर से भिन्न करने की अपेक्षा से, अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ, (ऐसे कहा)। अपने परिणामों से... द्रव्य अपने परिणामों से... तो परिणाम द्रव्य का अपना हुआ। समझ में आया? प्रभु की वाणी, कुन्दकुन्दाचार्यदेव दिगम्बर सन्त की वाणी, आहाहा! कहीं है नहीं। उसको समझना... आहाहा! अपना पक्ष छोड़कर, अपने माने हुए अभिप्राय को छोड़कर, वस्तु के स्वरूप की मर्यादा क्या है, उसका अर्थ, अभिप्राय बनाना—यह कोई अलौकिक बात है। इस अभिप्राय में भगवान आत्मा आत्मा है। आहाहा! उसके बिना अभिप्राय का विषय द्रव्य होता नहीं। आहाहा!

तो यहाँ कहते हैं कि उत्पन्न होता हुआ जीव ही... एकान्त कहा। इन परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है। इन परिणाम से उत्पन्न होता हुआ, ये परिणाम जीव ही है। परिणाम जीव ही है। आहाहा! पाठ में है न? जीव एव... संस्कृत में है। संस्कृत में पहली लाईन। जीव एव... संस्कृत में है। पहली लाईन में है। आहाहा! जीव ही है। अरे प्रभु! परिणाम जीव ही है? जीव तो द्रव्य है और यह परिणाम तो एक समय की पर्याय है। यहाँ तो द्रव्य जिस समय परिणमता है, ऐसा लेकर द्रव्य अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ, (ऐसा कहा)। पर के परिणाम से नहीं, पर का परिणाम उत्पन्न करता नहीं। आत्मा के अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन की जो अवस्था होती है, यह आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहाहा! अपने परिणाम के अतिरिक्त दूसरे का परिणाम—पर्याय आत्मा तीन काल में कभी कर सकता नहीं। यह पैर चलते हैं। पैर चलते हैं, इस क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं। यह तो परसों विशेष कहा था न? ये पैर चलते हैं, यह जमीन को छूते नहीं। ये पैर जमीन को छूते नहीं और पैर चलते हैं। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, परन्तु प्रभु! मार्ग यह है। यह उसको करना पड़ेगा। आहाहा! बात यह है।

ओहोहो! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ अनुसारी... दिगम्बर सन्त केवली के मार्गानुसारी। केवलज्ञानी के मार्गानुसारी चलनेवाले और केवलज्ञान को अल्पकाल में

प्राप्त करनेवाले... हिन्दी में 'लेनारा' का कहते हैं ? समझ में आया ? आहाहा ! कहा न पहले ? कि जब अपने द्रव्य के आश्रय से मति-श्रुतज्ञान हुआ, तो वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। षट्खण्डागम में है। आओ... आओ... अल्प काल में केवलज्ञान आओ। अब तुम्हारा केवलज्ञान दूर नहीं रहेगा। आहाहा ! एक व्यक्ति जाता हो तो (कहे), भैया ! यहाँ आओ... यहाँ आओ... यह रास्ता है सिद्धपुर जाने का... सिद्धपुर जाने का। आहाहा ! यह वाड रास्ते जाना है कि खुल्ला मार्ग से जाना है ? गाडा रास्ता तो दोनों है। भाई ! यहाँ आओ। इसी प्रकार यहाँ केवलज्ञान को कहते हैं कि आओ प्रभु ! अभी निकट में आओ। अब तुम दूर नहीं रह सकते। आहाहा ! दूज उगी है तो पूनम होगी ही होगी। दूज... दूज। आज तो चौदश है। दूज उगी, पूनम होगी ही होगी। इसी प्रकार क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाला समकिति अल्प काल में केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा ! कठिन पड़े जगत को, परन्तु भाई ! अन्तर की चीज़ है, प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से लेना है। नहीं है, उसमें से लेना नहीं है। अन्दर प्राप्त पड़ा है। आहाहा !

यह जीव ही है। यह जीव का परिणाम जीव ही है। आहाहा ! ३२०वीं गाथा में कहेंगे। पण्डितजी ! मोक्ष और मोक्ष का मार्ग जीव करता नहीं। आहाहा ! यह तो परिणाम करता है। ३२० गाथा। यह गाथा है न ३२०वीं। उदय, निर्जरा और बन्ध, मोक्ष को आत्मा जानता है, मोक्ष को आत्मा करता नहीं। गाथा ३२०। ३२०। उदय और निर्जरा... निर्जरा को जानता है, उदय को भी जानता है, निर्जरा को भी जानता है, बन्ध को भी जानता है और मोक्ष को भी जानता है। आहाहा ! समझ में आया ? करता है, ऐसा वहाँ नहीं लिया। वहाँ तो, एकदम अन्दर द्रव्य की दृष्टि निर्मल परिणति हुई तो पर्याय का भी जिसको आश्रय नहीं। पर्याय को उसका अवलम्बन नहीं और पर्याय का आश्रय द्रव्य को भी नहीं। आहाहा !

अलिंगग्रहण में तो ऐसा लिया है। अलिंगग्रहण है न ? २० बोल। १७२ गाथा प्रवचनसार। अलिंगग्रहण। २०वें बोल में तो ऐसा लिया है कि यह आत्मा... अपने प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो आत्मा... यह है... यह है... यह है... यही है (ऐसा) प्रत्यभिज्ञान का कारण आत्मा अपने द्रव्य को स्पर्शता नहीं... अपने द्रव्य को स्पर्शता

नहीं, ऐसी शुद्ध वेदनपर्याय है। वेदन में आया, वह मैं हूँ। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि द्रव्य है, वह मैं हूँ। यह किस अपेक्षा से लेना है? यह तो... मार्ग वीतराग का स्याद्वाद मार्ग है। परन्तु स्याद्वाद का अर्थ ऐसा नहीं कि निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है। उपादान से भी होता और निमित्त से भी होता है—यह स्याद्वाद नहीं है। यह तो फुदड़ीवाद है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं... वहाँ ३२० गाथा में (पर्याय में) जीव की (नास्ति कहते) हैं। जीव जो है, वह मोक्ष का मार्ग करता नहीं, मोक्ष को भी करता नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि... अभी ये गाथा ३२० चलेगी।

जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है... आहाहा! अभेद लिया। जिसमें से परिणाम आया, यह परिणाम उसका है, जीव का ही है। अजीव नहीं। यह अनेकान्त... यह अनेकान्त... जीव भी है और अजीव भी है—यह अनेकान्त नहीं, यह तो मिथ्या एकान्त—फुदड़ीवाद है। अपना परिणाम अपने से उत्पन्न होता है, यह जीव ही है, अजीव नहीं। आहाहा! यह कर्म से उत्पन्न नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान उत्पन्न हुआ, यह कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया? अजीव से नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जिस समय में जो (होनेवाला है), वह होगा, यह बात... हम क्या करें? भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसा दो वर्ष सुना। ... क्या कहते हैं? भगवान ने देखा ऐसा होगा (ऐसा कहते हो, तो) सर्वज्ञ परमात्मा जगत में हैं, उस सत्ता का स्वीकार है अन्दर? सत्ता का स्वीकार है तो दृष्टि ज्ञान में झुक जाती है। सर्वज्ञ(स्वभाव) में दृष्टि झुक जायेगी। भगवान ने उसके भव देखे ही नहीं।

(संवत्) १९७२ की बात है। यह कहते थे, भगवान ने (भव) देखा तो होगा। यहाँ कहा कि ज्ञानस्वरूप में जो दृष्टि झुक गयी, आहाहा! तो भगवान ने उसके भव देखे ही नहीं। एक-दो भव हो, वह भव नहीं, वे तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। साधारण बात में ले ले या मान ले, जिन्दगी चली जायेगी, बापू! ऐसा वीतरागमार्ग है, इसका सत्य निर्णय (नहीं करे) और सत्य के पंथ नहीं जाये, यह सब दुःख के पंथ हैं। आहाहा! शास्त्र में 'चपलाई' कहा है। पुण्य और पाप के अनेक प्रकार विकार, यह चपलाई है। चपलाई... चपलाई समझते हैं?

लोग 'चपल' नहीं कहते? 'चपलाई' ऐसा पाठ है। आहाहा! और चपलाई, वह दुःख है। शुभ और अशुभभाव दोनों जीव के परिणाम ही नहीं, वे तो अजीव के—जड़ के परिणाम हैं। आहाहा! ऐसी बात है। यहाँ तो अभी (शुद्ध) परिणाम अपना है, वहाँ तक लेना है। परिणाम अपने हैं, अजीव नहीं। एक बोल हुआ।

इसी प्रकार अजीव भी... यह शरीर, वाणी और कर्म... कोई कहे कि आत्मा राग-द्वेष करता है तो वहाँ कर्म बँधते हैं। यहाँ इनकार करते हैं। यह कर्मवर्गणा जो है, उसमें कर्मपर्याय होने का समय है, तब ही कर्मरूप से परिणामन करती है। यह अजीव भी अपने क्रमबद्धपरिणाम से परिणामन करता है। आहाहा! यह होठ चलते हैं, जीभ चलती है, यह उसमें (-परमाणु में) क्रमबद्ध में जो परिणाम है, उस परिणाम से उत्पन्न होता है, आत्मा से नहीं और आगे-पीछे भी नहीं। आहाहा! उस समय की भाषावर्गणा की पर्याय उत्पन्न होने की योग्यता से क्रमबद्ध में होती है। वचनवर्गणा में से वचन की पर्याय होती है, वह क्रमबद्ध में पर्याय आनेवाली है, उससे होती है। आत्मा तो कर सकता नहीं, परन्तु दूसरा परमाणु भी भाषा की पर्याय कर सकता नहीं। आहाहा! भाषा की पर्याय जिस परमाणु में हुई, उसी परमाणु में ये पर्याय क्रमबद्ध होती है। आहाहा!

यह कहा, **इसी प्रकार अजीव भी...** 'भी' क्यों कहा? कि पहले लिया था न? जीव का बोल लिया था। इसी प्रकार अजीव भी... **क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ...** आहाहा! यह लकड़ी ऐसे ऊँची होती है ऐसे, तो कहते हैं कि अँगुली से नहीं। उसके क्रमबद्ध में परिणाम आनेवाला था तो नीचे से ऊँची हुई। उस पर्याय का कर्ता आत्मा तो नहीं, परन्तु वास्तव में पर्याय का कर्ता उसका द्रव्य भी नहीं। पर्याय का कर्ता पर्याय है। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात। अभी तो बाहर में सम्प्रदाय में व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो। समकित क्या चीज़ है (उसकी खबर नहीं)। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा समकित है, जाओ। नौ तत्त्व की श्रद्धा... आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अफीम पीता है और फिर कहते हैं कि मुझे कस्तूरी की डकार आयेगी। अफीम पीता है और कस्तूरी की डकार आयेगी। इसी प्रकार प्रतिमा-फ्रतिमा

का राग तो विकल्प है। अभी तो सम्यग्दर्शन इत्यादि प्रतिमा कैसी? प्रतिमावाला दो-दो प्रतिमा, चार प्रतिमा ले। धूल में भी प्रतिमा नहीं। और पंच महाव्रत हो गया, अट्ठाईस मूलगुण हो गया। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत तो राग है, आस्रव है, बन्ध का कारण है, संसार है। कहाँ से धर्म आ गया उसको? आहाहा! यह पंच महाव्रत का राग बन्ध का कारण है, दुःख का कारण है।

कहा था न कल? नहीं? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' अनन्त बार दिगम्बर मुनि हुआ, पंच महाव्रत धारे, निरतिचार २८ मूलगुण पालनेवाला (हुआ)। उसके लिये चौका करे तो (आहार) भी न ले। उसके लिए चौका करे (और आहार ले) तो व्यवहार भी झूठा है। आहाहा! निश्चय तो है ही नहीं, सम्यग्दर्शन तो है ही नहीं। समझ में आया? उद्देशिक आहार का त्याग तो ग्यारहवीं प्रतिमावाले को भी है। ग्यारहवीं प्रतिमा है, उसको भी उद्देशिक का त्याग है। मुनि के लिए बनाता है और लेता है, तो लेनेवाला भी मिथ्यादृष्टि, देनेवाला भी मिथ्यादृष्टि। देनेवाला साधु मानकर देता है और साधु मानकर लेता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है... यह अजीव का परिणाम अजीव से उत्पन्न होता है। जीव नहीं। देखो! 'जीव नहीं' अर्थात् जीव से उत्पन्न होता नहीं। यह हिलते-चलते हैं तो जीव की प्रेरणा से हिलते-चलते हैं—ऐसा बिल्कुल झूठ है। आहाहा! हिलते-चलते हैं तो उसकी जड़ की पर्याय से है, ये जीव से बिल्कुल नहीं। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १५, सोमवार, दिनांक-२३-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-३

क्रमबद्ध कहा... प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर—एक के बाद एक... एक के बाद एक होनेवाली होगी। (शास्त्र में) इतना आया है कि क्रमरूप और अक्रमरूप—पर्याय दो प्रकार की है। ३८वीं गाथा। ३८। एक... एक लेना है। 'अहम् एको' वहाँ लिया है क्रमरूप और अक्रमरूप—दोनों ही पर्याय से भिन्न आत्मा है। तो ये अक्रम क्या है? यह अक्रम (अर्थात्) इस क्रमबद्ध को छोड़कर अक्रम (होती है)—ऐसा नहीं। एक समय में गति आदि होती है, यह एक के बाद एक होती है, (इसलिए) क्रम कहने में आता है और एक ही समय में योग, राग, लेश्यादि (पर्याय) होती है, उसको अक्रम कहने में आया है। होती है तो क्रमबद्ध, परन्तु एक साथ में योग, लेश्या, रागादि होता है पर्याय में, उसे अक्रम कहा। अक्रम का अर्थ एक साथ बहुत पर्याय हैं। और क्रम (का अर्थ)—एक समय में गति है तो दूसरे समय में वही गति (पर्याय) नहीं, तो यह क्रम(रूप) है। गति में क्रम है और योग और लेश्या, राग अक्रम हैं अर्थात् एक साथ है। है तो क्रमबद्ध।

(समयसार) ३८ गाथा में 'एको' जहाँ लिया है न। 'अहम् एको' लिया है वहाँ। मैं... क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान भाव से भिन्न मैं हूँ। आहाहा! मैं एकरूप शुद्ध चिदानन्द हूँ। क्रमरूप और अक्रमरूप से मैं भिन्न हूँ। क्रम-अक्रम हैं, यह व्यवहारिकभाव हैं। ३८ गाथा में 'एक' की व्याख्या। दूसरी जगह आता है तत्त्वार्थ राजवार्तिक में। परन्तु यह क्रम-अक्रम पर्याय की बात है। बाकी क्रम और अक्रम दूसरी रीति से लें तो गुण है, यह अक्रम है और पर्याय है, वह क्रम है। समझ में आया? जो ३८ गाथा में यह लेना नहीं और यहाँ भी यह लेना नहीं। आहाहा! है पण्डितजी? क्रम-अक्रम। अपनी पर्याय में क्रम से एक समय में एक गति होती है, दूसरी नहीं, तो इसे क्रम कहने में आता है। है तो पर्याय। और एक समय में... राग, योग, लेश्यादि एक समय में साथ में हैं। है तो पर्याय है, है तो क्रमबद्ध में। आहाहा! परन्तु एकसाथ होने से अक्रम कहने में आया है।

तो कोई दलील करता है कि देखो! अक्रम में क्रम लिखा है। यह तत्त्वार्थ राजवार्तिक

में है। क्रम... अक्रम... परन्तु ये तो दूसरी बात है। पर्याय में एकसाथ योग, लेश्यादि हो तो उसको अक्रम कहते हैं अथवा... यहाँ ३८ (गाथावाली अपेक्षा) नहीं, परन्तु दो जगह आता है कि गुण अक्रम है और पर्याय क्रम है। गुण सहवर्ती हैं (अर्थात्) एक साथ अनन्त हैं। तो 'एक साथ में' (का अर्थ) द्रव्य के साथ हैं ऐसा नहीं। क्या कहा? आत्मा में गुण अक्रम हैं—सहवर्ती हैं—एक साथ हैं। तो एक साथ गुण हैं, वह द्रव्य में एक साथ हैं, इसलिए (सहवर्ती कहा—ऐसा) नहीं, परन्तु गुण एक साथ अनन्त हैं, इसलिए सहवर्ती कहने में आया है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। क्या कहा?

कि जो गुण हैं... भगवान आत्मा एकरूप द्रव्य है और गुण अनन्त हैं। गुण एक साथ—सहवर्ती है, सहवर्ती अर्थात् साथ में वर्त रहे हैं। सहवर्ती अर्थात् द्रव्य के साथ गुण हैं, इसलिए सहवर्ती कहा, ऐसा नहीं। द्रव्य के साथ तो पर्याय भी है।

मुमुक्षु : अनन्त गुण एक साथ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त गुण साथ में हैं और पर्याय एक साथ में नहीं—यह सिद्ध करना है। क्रमबद्ध सिद्ध करना है न? गुण है... समझ में आता है? सूक्ष्म है भगवान! मार्ग तो अन्तर की सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! वीतराग परमात्मा... यहाँ कहते हैं... ३८ में गुरु ने समझाया... गुरु ने समझाया शिष्य को, ऐसा पाठ है। तो शिष्य को समझाया तो यह समझाया। प्रभु! एक बार सुन ले! तेरी पर्याय में अक्रम-क्रम दोनों ही हैं। दोनों का अर्थ—क्रमसर पर्याय है, एक गति है, तब दूसरी गति नहीं, वह क्रम और एक साथ में राग, योग, लेश्या; इसलिए अक्रम है। पर्याय क्रमवर्ती से छूटकर अक्रम हो जाती है, ऐसा नहीं। एक साथ रहती है, इसलिए अक्रम कहने में आया है। और गुण को भी अक्रम कहने में आया है। भगवान आत्मा गुण और पर्याय के भेद से भी रहित है। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु एकस्वरूप से विराजमान है, उसकी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, उसका नाम प्रथम धर्म की सीढ़ी है। आहाहा! तो उसमें गुण को सहवर्ती कहा (क्योंकि) गुण एक साथ रहते हैं। पर्याय एक साथ नहीं रहती। वहाँ इतना क्रमवर्ती कहा। यहाँ जरा क्रमबद्ध कहा। निश्चय से क्रम में एक के बाद एक

पर्याय होनेवाली है, वह होगी। आगे-पीछे पर्याय द्रव्य में होगी, ऐसा नहीं। प्रत्येक द्रव्य में पर्याय की व्यवस्थित व्यवस्था है। व्यवस्था अर्थात् विशेष अवस्था। उस उस समय में यह पर्याय अपने से व्यवस्थित है। दूसरा कोई पर्याय को करे अथवा उस पर्याय को फेरफार करे—ऐसा नहीं। दूसरी बात। जरा ख्याल में आयी बात।

एक आत्मा में ४७ शक्तियाँ—गुण लिये हैं। हैं अनन्त, (परन्तु) ४७ का नाम यहाँ लिया। ४७ शक्ति में एक ऐसा भाव नाम का गुण है। भाव नाम का गुण है, उस गुण का स्वरूप क्या? सूक्ष्म है भगवान! कोई भी पर्याय जो समय में होनेवाली (है, यह) होगी, यह भावगुण का कार्य है। समझ में आया? जो समय में जो पर्याय होगी, वह भावगुण का कार्य है। भावगुण के कारण से पर्याय जो समय में भवन—होती है, यह भावगुण के कारण से है, आगे-पीछे नहीं। एक बात। दूसरी बात। भावगुण है, उसका अपने अनन्त गुण में रूप है। तो भावगुण (है तो) उसमें वर्तमान पर्याय होनेवाली होगी, यह भावगुण के कारण से (होगी)। ऐसे अनन्त गुण में भी भावगुण का रूप है। तो अनन्त गुण में भावगुण के कारण... आहाहा! समझ में आता है, भाई? सूक्ष्म है, भगवान! यह क्रमबद्ध तो सूक्ष्म है। अभी पण्डितजी ने उसका स्पष्टीकरण किया। हमारे तो चलती है ७२ के वर्ष से। क्रमबद्ध में समझे? कहा था न कल? कि केवली ने देखा (ऐसा) होगा। बात तो सच्ची ऐसी ही है। जिस समय में जो पर्याय होगी, परन्तु केवली ने देखा ऐसा होगा, ऐसा पर से लेते हैं, उसको छोड़ दे। समझ में आया?

द्रव्य की पर्याय जब होनेवाली है, तब होगी, यह द्रव्य का स्वभाव है। ये द्रव्य में भाव नाम का एक गुण है कि जिसके कारण से जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, यह भावगुण से होती है। और वह पर्याय (व्यय होकर) दूसरी होती है तो उसमें एक भाव-अभाव नाम का गुण है। भगवान आत्मा में भाव-अभाव नाम का एक गुण है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! अनन्त गुण की पर्याय जो वर्तमान में है, यह होनेवाली है, वही है, परन्तु यह भाव का अभाव... भाव का अभाव अर्थात् वर्तमान में है, उसका अभाव (होना), ऐसा एक गुण है। (और अभाव-भाव) गुण के कारण से जो वर्तमान में पर्याय-भाव नहीं, उसका—अभाव का भाव, यह करना नहीं पड़े। मैं करूँ—ऐसा विकल्प (करना) नहीं (पड़ता)। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है।

यहाँ तो क्रमबद्ध आया, परन्तु दूसरी जगह क्रम-अक्रम (ऐसा भी) है, परन्तु ये क्रम-अक्रम पर्याय की बात है। यह क्रम में एक पीछे-पीछे होगी (और) अक्रम (भी) होगी—ऐसा नहीं। पर्याय में एक साथ रहनेवाली पर्याय को अक्रम कहते हैं और एक साथ नहीं रहनेवाली पर्याय को क्रम कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो... आहाहा! भाव नाम का गुण है... भाव नाम के दो गुण हैं आत्मा में। एक भावगुण ऐसा है कि षट्कारक से पर्याय में जो विकृतभाव होता है क्रमसर में, तो भावगुण के कारण से विकृतपर्याय का अभावरूप परिणमन होना, वह भावगुण का कार्य है। यहाँ तो क्रमबद्ध में निर्मल पर्याय प्रगट होती है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि आत्मा में क्रमबद्ध (परिणमन) है, ऐसा जब निर्णय करते हैं, तब तो ज्ञायकस्वरूप पर दृष्टि होती है। और ज्ञायकस्वभाव में अनन्त गुण हैं, तो अनन्त गुण में एक भाव नाम का भी गुण है (और एक) दूसरा भी भाव नाम का गुण है। दो भाव नाम के गुण हैं। एक भाव गुण का अर्थ कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह भाव (गुण) के कारण से होगी। इस भाव(गुण का) रूप अनन्त गुण में रहता है तो अनन्त गुण (में उसके) कारण से होगी। एक बात।

दूसरी बात। षट्कारक से जो पर्याय में विकृति होती है, यह क्रम (बद्ध के निर्णय) से नहीं, द्रव्य-गुण से नहीं, पर्याय में (अपने) षट्कारक से विकृत राग कर्ता, राग कार्य, राग सम्प्रदान आदि कारण हैं। रागादि, द्वेषादि, विषयवासना आदि जो पर्याय में षट्कारक परिणमन होता है, उसमें एक ऐसा गुण है कि विकार का अभाव होकर अविकार परिणमन होता है। भाव गुण एक। ४७ शक्ति में। सब आ गया है। व्याख्यान सब लिख गये हैं और प्रकाशित होंगे। समझ में आया? अपने में एक भावशक्ति—गुण ऐसा है कि जो विकृत परिणमन पर्याय में होता है उसका, भावगुण के कारण से विकृत के अभावरूप परिणमन होता है। समझ में आया? विकृत के अभावरूप परिणमन होता है। समझ में आया? विकृत के अभावरूप धर्मरूप—मोक्षमार्ग की पर्यायरूप परिणमन होता है। आहाहा! क्रमबद्ध में भी ऐसा निकालना है। समझ में आया?

कोई कहे कि क्रमबद्ध है... क्रमबद्ध है तो (होनेवाली पर्याय) होगी। परन्तु सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! पर्याय तो क्रमबद्ध ही होती है, परन्तु क्रमबद्ध में अकर्तापना

कब आता है ? मैं करूँ, मैं इस पर्याय को करूँ, तब तक तो विकल्प है और कर्तापने का भाव है। पर्याय क्रमबद्ध होती है और मैं करूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं और पर्याय होती है, उसे मैं करूँ, ऐसा (कर्तापने का) भाव भी नहीं। आहाहा! सेठ! ऐसी सूक्ष्म बात है। आहाहा! प्रभु अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु... 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसी जो अन्दर चीज़ है, वह पर्याय से भिन्न है। आहाहा! ये क्रमबद्ध की पर्याय और अक्रम पर्याय... अक्रम अर्थात् साथ में रहनेवाले योग, लेश्यादि, उससे भी रहित हैं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा जब दृष्टि में आता है, तब उसमें जितने गुण हैं, उन गुण में भावगुण का रूप है, उस कारण से एक समय में अनन्त गुण की पर्याय होती ही है। मैं करूँ तो होती है, ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यही समझने जैसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझने जैसी बात है। सूक्ष्म बातें, बापू! समझ में आया ? प्रियंकरजी! यह प्रियंकर करनेवाली चीज़ है। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में वर्तमान ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव है। त्रिकाल रहेगा, ऐसा त्रिकाल की अपेक्षा में भी व्यवहार आ गया। कथन आवे, परन्तु बाकी एक समय में परमात्मा स्वयं पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव है। क्रमबद्ध के निर्णय में अकर्तापना आता है अथवा ज्ञातापना आता है। ज्ञातापना या अकर्तापना कब आता है ? कि क्रमबद्ध के लक्ष्य में पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, जिसमें से (पर्याय) क्रमबद्ध होती है, उस द्रव्य पर दृष्टि देना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त गुण का विकृतरूप परिणमन जो होता है... परन्तु उसमें ऐसा गुण है कि द्रव्य को पकड़ा... क्रमबद्धपर्याय में द्रव्य को— ज्ञायक को पकड़ा, परन्तु पर्याय में पर्याय का निर्णय पर्याय से नहीं होता। पर्याय का ज्ञान, द्रव्य का निर्णय करने से पर्याय का ज्ञान होता है। आहाहा! तो यहाँ कहते हैं कि पर्याय में जो क्रमसर पर्याय है, उसका जब निर्णय करते हैं तो ज्ञायक की दृष्टि होती है। ज्ञायक में 'भाव' नाम के दो गुण हैं। एक भाव नाम के गुण के कारण से अनन्त गुण में ऐसी शक्ति अपने से है कि उस समय में पर्याय होगी, होगी और होगी। मैं करूँ तो होगी, ऐसा नहीं। और एक भावगुण ऐसा है कि पर्याय का षट्कारक परिणमन होता है

और क्रमबद्ध का निर्णय जब ज्ञायक पर जाता है, तब उसको निर्विकारी—धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है। वह भावगुण... समझ में आया? आहाहा!

ऐसी व्याख्या अब। वह तो भाई! व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो, भक्ति करो, वह सीधा सट था। वह सब तो भटकने का था। राग की क्रिया है और राग का कर्ता होता है। आगे-पीछे करने जाता है तो मिथ्यात्व ही बढ़ता है। आहाहा! क्योंकि जो द्रव्य में भाव नाम का गुण-स्वभाव है, उस गुण के कारण से वर्तमान पर्याय होगी, होगी और होगी। आगे-पीछे नहीं होगी, जिस समय में होनेवाली (है, तब) होगी ही होगी। मैं करूँ तो पर्याय होती है, ऐसी दृष्टि भी उड़ जाती है। आहाहा! ऐसा विकल्प तो उड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो मूल तत्त्व है। परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने जो कहा, वह कोई पंथ नहीं, वह कोई पक्ष नहीं, यह तो ऐसा वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

उस वस्तु का स्वरूप यह है कि जब उस वस्तु की दृष्टि होती है और क्रमबद्ध पर्याय पर से लक्ष्य छूट जाता है, तब उसकी द्रव्य की दृष्टि होती है तो द्रव्य में दो भावगुण पड़े हैं (उसमें से) एक गुण के कारण से विकृतरूप परिणमन के अभावरूप परिणमन होता है। विकृतरूप परिणमन के अभावरूप परिणमन होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यप परिणमन होता है। और (दूसरे) एक भाव (गुण) के कारण उस समय जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। आहाहा! मैं वह पर्याय करूँ तो द्रव्य में होगी, ऐसा प्रश्न है नहीं, ऐसा विकल्प है नहीं। डाह्याभाई! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

वस्तु में विकल्प तो नहीं, परन्तु जब भावगुण के कारण से वो पर्याय होगी, पीछे मैं करूँ, ऐसा विकल्प का लक्ष्य भी है नहीं। यह पर्याय करूँ ऐसा लक्ष्य भी उसमें है नहीं। उसका लक्ष्य तो द्रव्य पर जोर आया है कि जिसमें भाव, अभाव, अभाव-भाव (आदि) अनन्त गुण पड़े हैं। सूक्ष्म बात है। एक-एक बात पर पहले बहुत व्याख्यान हो गये हैं। ये छप गये हैं। मुम्बई निर्णय किया न। ३५ छपाना है। चार मास में खास इस पर लिया था सब—४७ शक्तियाँ, ४७ नय, २० अलिंगग्रहण के बोल, छह अव्यक्त के बोल आदि पर व्याख्यान चार मास में एक साथ लिये थे। उसमें यह आया है कि भाव नाम के दो गुण आत्मा में हैं, क्रमबद्ध की पर्याय का निर्णय जब करते हैं, तब उसकी

दृष्टि द्रव्य पर जाती है और द्रव्य में गुण पड़ा है भाव नाम का, उस कारण से विकार रहित परिणमन होता है। वरना तो क्रमबद्ध में विकार भी आता है। समझ में आया? परन्तु क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, वहाँ क्रमबद्ध में निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

तो कहते हैं कि प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... यहाँ निर्मल परिणाम को अपना परिणाम कहा। समझ में आया? वरना पर्याय है, वह द्रव्य से भिन्न है। पर्याय तो द्रव्य के ऊपर तैरती है। पर्याय का प्रवेश द्रव्य में है नहीं। परन्तु यहाँ तो इतना सिद्ध करना है कि जब जो परिणाम होता है, वह क्रमसर होता है— क्रमबद्ध होता है। साधारण भाषा तो ऐसे आती है न कि गुण सहवर्ती हैं और पर्याय क्रमवर्ती हैं। ऐसा साधारण शब्द आया है। यहाँ इसके उपरान्त 'क्रमनियमित' (शब्द पड़ा है)। क्रमवर्ती तो है, परन्तु नियम से जो होनेवाली है, वह होगी। आहाहा! डाह्याभाई!

मुमुक्षु : जो पर्याय आनेवाली है, वही होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही होगी। सत् है न? वास्तव में तो सत् पर्याय...

यहाँ तो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी क्रमबद्ध का निर्णय करने से द्रव्यस्वभाव का निर्णय होता है, उसका परिणमन निर्मल ही होता है। समझ में आया? विकार होता है, परन्तु विकार से रहित (दृष्टि का) परिणमन उसका होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! बाबूभाई! ऐसी बात है। लोगों को बैठे, न बैठे, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वस्तु ही ऐसी है। आत्मा है और आत्मा में अनन्त गुण हैं, तो अनन्त गुण में एक गुण ऐसा है। वर्तमान पर्याय हो सब गुण की ऐसा भी उसमें गुण है। पर्याय करूँ तो होगी, ऐसी बात है नहीं। एक बात। और भावपर्याय है, उसका अभाव होता है, तो उस पर्याय का व्यय मैं करूँ ऐसा भी नहीं है। क्योंकि भाव-अभाव नाम का एक गुण आत्मा में है। समझ में आया? आहाहा! वह व्यय होकर... आहाहा!

वीतरागमार्ग तो देखो! ओहोहो! तीन लोक का नाथ जिनेश्वरदेव का पंथ, किसी दूसरी जाति का है, भाई! दुनिया के साथ कहीं मेल (खाये ऐसा नहीं)। कठिन (पड़े),

इसलिए लोगों 'सोनगढ़ का एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है...' (ऐसा कहते हैं)। कहो प्रभु! तुम भी प्रभु हो। सिद्धान्त में तो ऐसा लिया है कि समकिति को पर्यायदृष्टि उड़ गयी है, तो द्रव्य (अपेक्षा) से पर द्रव्य—(जीव) उसका साधमी है क्योंकि अपनी पर्यायदृष्टि उड़ गयी है तो दूसरे की पर्याय नहीं देखता। पर्याय से रहित द्रव्य उसका है (ऐसा देखते हैं)। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य साधमी है, भगवान है। अपने पर्याय का लक्ष्य उसमें छूटा तो पर की पर्याय है, उस पर से लक्ष्य छूट गया है, तो उसका द्रव्य है, उसे देखते हैं। आहाहा! भगवानस्वरूप परमात्मा है अन्दर। ऊपर से शरीर आदि या राग आदि परिणाम चाहे वह हो, परन्तु अन्दर तो इससे भिन्न भगवान है। आहाहा! ऐसी दृष्टि हुए बिना क्रमबद्ध की और धर्म की निर्मल पर्याय उत्पन्न होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले बहुत बात होती थी। बहुत बार चल गया न, इसलिए नहीं तो शुरुआत में यह व्याख्यान होता था।

अपने परिणामों से उत्पन्न... ये परिणाम (कौन से)? निर्मल लेना। विकार होता है साथ में, परन्तु उसका ज्ञान होता है, ये (ज्ञान) परिणाम उसका लेना है। आहाहा! समझ में आया? विकार तो होता है परिणाम में, परन्तु वह अपना परिणाम नहीं। क्योंकि क्रमबद्ध का जब निर्णय होता है, तब तो द्रव्य-ज्ञायक पर दृष्टि पड़ती है। ज्ञायक में तो कोई विकारी गुण तो है ही नहीं, अविकारी अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! ये अनन्त गुण का पिण्ड का स्वीकार जहाँ हुआ तो पर्याय में विकृति होती है, पर ये अपने परिणाम नहीं। उससे रहित परिणाम हैं, वे अपने परिणाम हैं। क्रमसर होता है, होना हो तब होता है, तो भी निर्मल ही अपने परिणाम हैं। समझ में आया?

विकृत अवस्था ज्ञानी को भी होती है, परन्तु वह अपना परिणाम है, ऐसा (उसको) नहीं आता। आहाहा! क्रमबद्ध में विकृत परिणाम भी क्रमसर ही आता है। वह विकृत (परिणाम) जो क्रमसर आता है, उसी समय में विकृति से रहित... क्रमबद्ध के निर्णय में द्रव्य का (निर्णय) किया तो द्रव्य में तो अनन्त गुण हैं। अनन्त गुण निर्मल हैं, तो विकृत अवस्था से रहित क्रमबद्ध का निर्णय करते (हुए) द्रव्य का निर्णय हुआ तो निर्मल पर्याय की ही उत्पत्ति होती है। वह अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो रहस्य का पार न मिले। कहीं पहुँच सकते नहीं अर्थात्... यह तो सन्तों की वाणी—दिगम्बर सन्तों की वाणी तो अलौकिक है। आहाहा! कहीं है नहीं। वेदान्त (सब मिलकर) एक आत्मा है, शुद्ध है—कहते हैं। सुधरेल में बहुत चलती है न! परदेश में भी बहुत चलता है वेदान्त। वेदान्त। एक सर्वव्यापक है... सर्वव्यापक है। मुसलमान में भी ऐसा चलता है। उसमें एक सूफी नाम का मार्ग है, सूफी फकीर। देखा है, हमने देखा है। एक बार बोटद हम बाहर निकलते थे तो सूफी सामने मिला। मिला तो सामने बड़ा हो गया। वैराग्य दिखता है। फकीर हों। यह माने एक हम हैं, एक खुदा... एक खुदा हम हैं। दो चीज़ है नहीं हैं। हम हैं खुद खुदा यारो... हम हैं खुद खुदा यारो। दूसरी कोई चीज़ है नहीं। ऐसा माननेवाला... हम तो बहुत के परिचय में आये हैं न? हम दरवाजे से निकलते थे। दो फकीर थे। वैराग्य... उदास... उदास... .. (पूछा), कौन हैं? ये सूफी फकीर है। एक खुदा माननेवाले। एक ही खुदा है। सब झूठ है। वेदान्त भी सर्वव्यापक मानते हैं। वेदान्त तो वहाँ तक कहता है कि आत्मा ने आत्मा का अनुभव—दो कहाँ से आये? यहाँ तो आत्मा और आत्मा की पर्याय—दो लेना है। अनुभव है ये पर्याय है। आत्मा त्रिकाली है, ये क्रमबद्ध का जहाँ निर्णय करते हैं तो आत्मा का अनुभव होता है। आत्मा का अनुभव और आत्मा—(ऐसे) दो का वेदान्त निषेध करता है। आत्मा और अनुभव, (यह तो) द्वैत हो गया।—ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! द्वैत ही है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : है; अनुभव की पर्याय है, विकार की पर्याय भी है, परन्तु उस पर्याय से रहित अपना परिणामन होता है। परन्तु है तो सही न? है तो उससे रहित हुआ न? आहाहा! नहीं हो तो उससे रहित क्या (होना)? छह द्रव्य से रहित आत्मा है। तो छह द्रव्य हैं या नहीं? अपने आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त आत्मा आदि सब हैं। छह द्रव्य का... एक समय की पर्याय में द्रव्य का जहाँ आश्रय होकर निर्णय होता है तो उस पर्याय में अपने द्रव्य-गुण का भी ज्ञान होता है, वह पर्याय में ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव अपने से (प्रगट) होता है। ... स्व-परप्रकाशक की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! पर को जानू, यह भी नहीं। पर को जानना ये भी है नहीं। पर सम्बन्धी अपना

ज्ञान जो है, उसको ही जानते हैं। पर को छूता नहीं तो पर को जाने कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है, भैया! बात तो ऐसी है। आहाहा! बराबर न समझे तो रात्रि को पूछना। ऐसा नहीं समझना कि हमारे नहीं पूछते। सब को पूछना। आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... यहाँ तो (कहा कि) **अपने परिणामों से...** भाई! **अपने परिणामों से...** विकार ये अपने परिणाम नहीं, जीव का ये परिणाम ही नहीं। उस समय में विकृत (परिणाम) होता है, परन्तु उसी समय में द्रव्य की दृष्टि से क्रमबद्ध का निर्णय है, तो विकार रहित अपना परिणाम क्रमबद्ध में होता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो एक लाईन का अर्थ तीसरी बार होता है। परसों किया था, कल किया था, आज किया। पार नहीं, वीतरागमार्ग के शास्त्र में रहस्य का पार नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ के श्रीमुख से दिव्यध्वनि में आयी है। दिव्यध्वनि में से 'ॐकार धुनी सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा! भव्य प्राणी... आहाहा!

३८ गाथा में तो ऐसा कहा है, ३८ में कि क्रम-अक्रम... शिष्य पंचम काल का श्रोता है। पंचम काल की बात है न? साधु पंचम काल के हैं न, यह अमृतचन्द्राचार्य आदि? पंचम काल—पंचम आरा। पंचम काल में अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य (हुए और) श्रोता पंचम काल का है। श्रोता को समझते हैं... ३८ गाथा में ऐसा लिया है कि श्रोता सुनता है और सुनकर तुरन्त प्रतिबुद्ध (होता है)—पाते हैं। और ऐसा प्रतिबुद्ध (होता है)—पाते हैं... पाठ है ३८ में। मुझे सम्यग्दर्शन जो हुआ, मिथ्यात्व का नाश हुआ, ये (मिथ्यात्व का) अंकुर कभी उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा! ३८ में है, ३८ गाथा में है। एक ९२ में है। प्रवचनसार ९२वीं गाथा में है।

ये अंकुर... पंचम काल के श्रोता ऐसा कहते हैं। पंचम काल के श्रोता को गुरु ने समझाया—अप्रतिबुद्ध को समझाया। कितने ही ऐसा कहते हैं कि समयसार तो साधु को (ही पढ़ना) चाहिए। परन्तु यहाँ पाठ में तो अप्रतिबुद्ध को समझाया है। आहाहा! अप्रतिबुद्ध समझा... आहाहा! सन्तों ने ऐसी बात ली है कि शिष्य ऐसा कहता है कि प्रभो! हमारे मिथ्यात्व का नाश हुआ, ये मिथ्यात्व का अंकुर अब सादि-अनन्त (काल) में (कभी) उत्पन्न नहीं होगा। आहाहा! अरे प्रभु! तुम तो छद्मस्थ हो। पंचम

काल के श्रोता अप्रतिबुद्ध था, ऐसा सुना तो इतना जोर आ गया ? डाह्याभाई ! भगवान ! जोर क्या, आत्मा में इतनी ताकत ही है । ओहोहो ! 'अप्रतिहत' की बात की है ३८ (गाथा) में, ९२ (गाथा) में । उत्पन्न हुआ, वह हुआ । सम्यग्दर्शन हुआ और पीछे गिर जायेगा (-नाश होगा) —यह बात है ही नहीं । आस्रव अधिकार में लिया है, जरा ज्ञान कराने को (कि) नय से परिच्युत हो तो ऐसा होता है... आस्रव में नय परिच्युत... (कलश १२१) ।

श्रोता तो ऐसा लिया है कि आहाहा ! ऐसे सुनते ही उसे रस आ गया और द्रव्य ऊपर झुक गया । आहाहा ! झुक गया और जो अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, तो कहते हैं कि अब हम सम्यग्दर्शन से गिरेंगे और मिथ्यात्व उत्पन्न होगा—यह हमारे नहीं । ऐसी बात है । आहाहा ! ९२ में भी ऐसा कहा है प्रवचनसार में । आगम कुशल से और अपने अनुभव से जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ तो मिथ्यात्व आदि का अंकुर उत्पन्न होगा नहीं । चारित्र की बात दूसरी है । क्योंकि पंचम काल में हैं तो स्वर्ग में जायेंगे तो चारित्र नहीं रहेगा । पंचम काल का साधु है न ? केवलज्ञान तो है नहीं । दर्शन में मिथ्यात्व का अंकुर हमको उत्पन्न नहीं होगा । हम चारित्रवन्त हैं (फिर भी) चारित्र का नाश नहीं होगा, ऐसा नहीं । क्योंकि हम पंचम काल में हैं और हमें स्वर्ग में जाना पड़ेगा । क्योंकि केवलज्ञान है नहीं, हमारे पुरुषार्थ में कमी है । यह काल के कारण से नहीं । आहाहा ! यहाँ से तो स्वर्ग में जाना पड़ेगा, तो चारित्र से तो रहित होगा । आहाहा !

मुमुक्षु : चारित्र अप्रतिहत नहीं है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र अप्रतिहत नहीं है, ऐसा कहा न । यही कहा । आहाहा ! मस्तिष्क में कितनी बात याद आवे, कहीं सब कहा जाये ?

चारित्रपाहुड़ में भाव आया है । चारित्रपाहुड़ में पर्याय का... पर्याय अक्षय है । दो बोल हैं न ? अमेय । अक्षय और अमेय । पर्याय, हों । द्रव्य-गुण की तो बात क्या करना ! आहाहा ! द्रव्य की जहाँ अनुभव दृष्टि हुई—मैं पूर्णानन्द प्रभु अभेद अखण्डानन्द हूँ, ऐसी जब दृष्टि हुई—तो कहते हैं... आहाहा ! ये पर्याय चारित्रवन्त की... चारित्रवन्त की ली है, हों ! अक्षय है और अमेय है । नहीं तो चारित्र तो छूट जायेगा, हमारा चारित्र छूटा तो भी हम तो दूसरे भव में लेंगे ही लेंगे और पूर्ण करेंगे । (कोई कहे), हम पंचम काल

के साधु हैं। हम पंचम काल के नहीं, हम तो हमारे आत्मा के हैं। काल-बाल हमको नडता नहीं। आहाहा! चारित्र की पर्याय में... चारित्र के अधिकार में लिया है वहाँ। उसकी पर्याय अक्षय और अमेय (अर्थात्) पर्याय में मर्यादा नहीं। इतनी सामर्थ्य पर्याय में है। क्योंकि अनन्त गुण की पर्याय में एक-एक पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है कि अनन्त गुण को जाने, अनन्त पर्याय को जाने, ऐसी एक ज्ञानपर्याय की सामर्थ्य है, ऐसी सामर्थ्य श्रद्धा की, ऐसी सामर्थ्य चारित्र की, ऐसी सामर्थ्य अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व की आदि प्रत्येक पर्याय की इतनी सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

उस पर्याय में, ऐसे कहते हैं कि हमें तो मिथ्यात्व (फिर से) उत्पन्न नहीं होगा। प्रभु! आप भगवान के पास गये नहीं और आपने इतना देखा (-जाना)? आप तो महाव्रतधारी हो न? आप महाव्रतधारी हो और इतना कब देखा(-जाना)? हमारा नाथ ऐसे पुकार करता है। हमारा प्रभु पुकार करता है। यह प्रभु ऐसे कहता है कि हमको मिथ्यात्व अब (फिर से) कभी नहीं होगा। आहाहा! ये क्रमबद्ध का निर्णय करने में दर्शन का निर्णय जो हुआ तो अपना निर्मल परिणाम हुआ, पश्चात् ये निर्मल सम्यक् परिणाम नहीं गिरेगा। समझ में आया? सेठ! ऐसी बात सुनी नहीं हो कभी इतने वर्ष में। पैसे सम्हालने जाये बेचारा। दया करो और व्रत करो, मन्दिर बनाओ। उसके गाँव में मन्दिर नहीं है। मन्दिर बनाते हैं न? नया बनाते हैं न? तुमने बताया था न कि ये नया बनता है। वह मन्दिर के पास में... आहाहा! वह तो जिस समय में जो पर्याय जड़ की होनेवाली है, वह होगी, होगी, होगी। दूसरा करे (तो हो) और दूसरा न करे तो न हो—ऐसा है नहीं। वह यहाँ आया।

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है... आहाहा! पण्डितजी! जीव ही है, (ऐसा निर्णय हुआ) तो विकार का परिणाम दूर कर दिया। आहाहा! जीव ही है... कि क्रमबद्ध का जहाँ निर्णय हुआ... आहाहा! गजब बात है! अमृतचन्द्र आचार्य। गाथा करनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य ने तीर्थकर जैसा काम किया है और अमृतचन्द्राचार्य ने उनके गणधर जैसा काम किया है। आहाहा! अरे! वाणी मिलना मुश्किल, बापू! प्रभु! यह कोई लौकिक बात नहीं, जगत के प्रपंच की बात नहीं, यह तो अन्तर की बात है। आहाहा! जीव क्रमबद्ध... आहाहा! इसमें से निकलना रुचता नहीं, इतना इसमें भरा है। आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... विकारादि है तो सही, परन्तु विकार का ज्ञान है, वह अपना परिणाम है। समझ में आया? क्योंकि अकर्तापने की बात है न? अकर्तापने में ज्ञाता-दृष्टा हुआ। ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम, वह अपना परिणाम है। उसमें राग आता है, उस राग को जानना, ऐसा ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम ही अपना है। आहाहा!

क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... ये परिणाम का क्रमबद्ध। परिणाम में क्रमबद्ध लेना है न? द्रव्य में क्या है? क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... परिणाम में क्रमबद्ध लेना है न? आहाहा! सूक्ष्म है, परन्तु प्रभु! अमृत का घड़ा है वह तो। ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में भी कल्पित बात है। शास्त्र बनाये, वह कल्पित बनाये। वह तो भगवान त्रिलोक के नाथ की वाणी को सर्वज्ञ के मार्गानुसारी-आढ़तिया होकर बात करते हैं। सर्वज्ञ के आढ़तिया हैं मुनि। आढ़तिया समझते हैं न? माल... आहाहा! यह सर्वज्ञ भगवान का माल है प्रत्यक्षपने, श्रुतज्ञानी को परोक्ष है। प्रत्यक्षपने उनका माल है, ये प्रत्यक्षपने बताते हैं। आहाहा! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ है न। यह तेरी पर्याय जिस समय में होनी है, वह होगी, उस पर से दृष्टि हटा दे। आहाहा! इतना सब होगा... क्या कहते हैं? जिस समय में पर्याय सत् है... उत्पाद-व्ययरूप सत् है न? उत्पाद-व्यय, वह सत् है। व्यय अभावरूप है, परन्तु सत् है। तीनों सत् हैं—उत्पाद सत् है, व्यय सत् है... अभाव सत् है, भाव सत् है, ध्रुव सत् है। और (किसी) सत् को किसी की अपेक्षा नहीं। ऐसा १०१ गाथा में है। प्रवचनसार में आया है। उत्पाद की अपेक्षा ध्रुव को नहीं, आहाहा! ध्रुव की अपेक्षा उत्पाद को नहीं। आहाहा!

यहाँ (कहते हैं कि) जो परिणाम उत्पन्न होता है, वह जीव ही है। यह निर्मल परिणाम उत्पन्न हुआ... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति... क्रमबद्ध परिणाम में यह परिणाम उत्पन्न हुआ। आहाहा! गजब बात है! यह दिगम्बर शास्त्र। समझे नहीं और समझे बिना वाँचा करे और सामने रखे और सेठिया जैसे पैसेवाले लोग बैठे हों तो जय नारायण करे, उसे कुछ खबर नहीं हो। सेठ! दृष्टान्त देते हैं। सब आते हैं न सेठ। यहाँ एक सेठ है... तुम्हारे इन्दौर के सेठ वहाँ के मुख्य। हुकमीचन्दजी। हुकमीचन्दजी सुनते थे। यहाँ आ गये हैं। प्रवचनमण्डप उनके हाथ से उद्घाटन किया। राजकुमार भी आये

थे, यह मकान बनाया तब। हुकमीचन्दजी तो सुनकर ऐसे कहते थे कि स्वामीजी का (कथन) पण्डित लोगों को समझना पड़ेगा। ऐसा कहते थे। जरा नरम व्यक्ति है। राजकुमार में ऐसा है नहीं। वे सब गड़बड़ है। यहाँ तो सत्य है, वह सत्य है।

हुकमीचन्दजी तो ऐसे कहते थे... पहले साधारण बात करते थे। पहले जब आये थे, एक के (संवत् २००१) वर्ष में। पहले आये थे एक के वर्ष में, ३५ वर्ष पहले। पहले तो जब सुनी उपादान की बात, तो (कहा) महाराज तो अभी आये हैं न स्थानकवासी में से, तो यह बात बहुत छंछेड़ना नहीं, बहुत छंछेड़ना नहीं, पहले ऐसे कहते थे। छंछेड़ना नहीं क्योंकि... मैंने कहा, छंछेड़ो। सेठ! सब बात मैं निकालूंगा। कि उपादान पर्याय अपने से होती है, पर से नहीं। ढिंढोरा पीटो। यहाँ कुछ एकान्त नहीं। ढूँढ़िया में से आये न... पश्चात् तो अनुकूल कर डाला। कितनी बार आये? तीन बार आये। पहली बार आये थे एक के वर्ष में, दूसरी बार आये थे उद्घाटन के समय पर... दोपहर को (कहा कि) २५००० संस्था को देता हूँ। संस्था को २५००० देता हूँ। पहले एक के वर्ष में। ३५ साल हुए। परन्तु यह मार्ग... अनुकूल बहुत बोलते थे। पण्डित लोगों को भी समझना पड़ेगा। स्वामीजी कहते हैं, वो बराबर समझे नहीं है न। आहाहा!

अजीव नहीं... यह परिणाम है, (वह) अजीव नहीं। उसका अर्थ है कि वह परिणाम में राग भी नहीं और अजीव भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग जरा सूक्ष्म है, प्रभु! पकड़ने के लिये बहुत ध्यान रखना चाहिए। बहुत प्रयत्न चाहिए। आहाहा! दुनिया को प्रसन्न रखने की बात करे, रंजन लोकरंजन... तारणस्वामी कहते हैं न कि सारी दुनिया का लोकरंजन करते हैं। जनरंजन। यहाँ अष्टपाहुड़ में आया है। जनरंजन... लोगों को ठीक कैसे पड़े। अरे! ठीक क्या? (जो) है, वह कह न? जनरंजन-दुनिया प्रसन्न हो, ऐसा करो, देश सेवा करो, एक-दूसरे को मदद करो, साधर्मी को मदद करो। परन्तु यहाँ कहते हैं कि कोई मदद-फदद कर सकता नहीं। आहाहा! जड़ की पर्याय... आहाहा! मुनि-सच्चे सन्त हैं, (उन्हें) आहार-पानी देते हैं, ये आहार-पानी देने की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं। आहाहा! उस समय जो विकल्प आया... उस समय ज्ञानी भी आहार देता है, परन्तु विकल्प से रहित निर्मल परिणाम का स्वामी है वह निर्मल परिणाम उससे उत्पन्न होता है। क्रमबद्ध से निर्मल परिणाम उत्पन्न होता है।

आहाहा! मैं राग भी नहीं और मैं आहार मुनि को देता हूँ, (उस क्रिया का) भी धनी-स्वामी नहीं। आहाहा! बहुत कठिन बात है।

वह लोग यहाँ कहे, श्वेताम्बर की यात्रा करे और यह शत्रुंजय की। यात्रा करके नीचे उतरे और साधु को आहार दे तो बहुत लाभ होगा। उनके साधु चाहे जैसे हों। साधु कहाँ था? श्वेताम्बर में साधु... गृहीत मिथ्यात्व है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आया न पंचम अध्याय में? अन्यमत में... अन्यमत में डाला है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी सबको अन्यमत में डाला है। दुःख लगे... परन्तु सत्य है, यह सत्य है। तेरे लाभ का कारण तो यह है। तुझे अनुकूल बोले... विपरीत हो जाये, नरक और निगोद मिलेगा। प्रभु! यह रंजन करने जायेगा, नरक, निगोद मिलेगा। आहाहा!

यहाँ बात कहते हैं, **जीव ही है, अजीव नहीं**। यह अनेकान्त। जीव भी है परिणाम का कर्ता और अजीव भी परिणाम का कर्ता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! वास्तव में तो क्रमबद्ध के निर्णय में जब सम्यग्दर्शन हुआ, उस परिणाम के काल में राग है, परन्तु उस समय राग सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने से होता है। राग है तो ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! यह अपने परिणाम का कर्ता अजीव नहीं। अर्थात् क्या कहते हैं? जो अपने में ज्ञाता-दृष्टा का परिणाम हुआ, तो राग को जाना, यह भी नहीं। अपने को जाना है, पर्याय में (अर्थात्) राग सम्बन्धी का ज्ञान अपना है, उसको जाना है। समझ में आया? राग भी अजीव है, तो अजीव का ज्ञान यहाँ हुआ है, यह भी व्यवहार कहने में आया है। उस समय में अपनी स्व-परप्रकाशक शक्ति से अजीव सम्बन्धी पर का ज्ञान अपने से अपने में हुआ है, पर के कारण से नहीं। राग का ज्ञान राग है तो हुआ—ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अजीव नहीं... अजीव परिणाम नहीं। आहाहा! इस परिणाम का कर्ता अजीव नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा... यह क्रमसर कहा (अर्थात्) जो होने का (है, वह) होगा ही होगा, ऐसा जब अकर्तापना हो जाता है, तब अकर्तापने का ज्ञाता हो जाता है। ज्ञाता होते ही दृष्टि ज्ञान पर जाती है। आहाहा! इस परिणाम में जो राग को जानने (रूप) परिणाम हुआ तो राग के कारण से जानना हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग का भी ज्ञान हुआ न? भावगुण कहा न? (पहले) भावगुण के कारण से विकृतपने

(परिणाम) षट्कारक से होते हैं, परन्तु (दूसरे) भावगुण के कारण से विकृत रहित उसका परिणाम है। वो भावगुण, होनेवाला होगा, ये दूसरा (गुण) है। एक भावगुण है, उसमें (होनेवाली) पर्याय होगी, वह दूसरा (गुण) है और एक भाव (गुण का कार्य) विकृति रहित भाव है। दो भावगुण हैं ४७ (शक्ति) में। समझ में आया? तो दूसरा भाव (गुण) ऐसा है कि दृष्टि जब द्रव्य पर गयी और क्रमबद्ध का निर्णय हुआ, तो राग है तो राग का ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं। राग का तो कर्ता(पना) आता नहीं, परन्तु राग का ज्ञान हुआ ऐसा भी व्यवहार है। यह अपने स्व-परप्रकाशक का ज्ञान अपने परिणामों से उत्पन्न होता है, यह राग से और अजीव से नहीं। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १, मंगलवार, दिनांक-२४-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-४

यह ३०८ से ३११ (गाथा) है। पहली लाईन चली है। तीन दिन चली, आज चौथा दिन है। क्या कहते हैं? ... प्रथम... मुख्य बात तो यह है कि... अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं... 'तावत्' शब्द पड़ा है। मुख्य बात यह है कि जीव क्रमबद्ध ऐसे... जीव है, (उसकी) क्रमबद्धपर्याय होती है। यह परसों नहीं कहा था? कि आत्मा में क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती गुण है। यह कल नहीं आया था। ...आत्मा जो वस्तु है, उसमें एक क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती नाम का गुण है। जब क्रमबद्ध का निर्णय करते हैं कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली (है, वह) क्रमसर होगी, आगे-पीछे नहीं। पर से नहीं, आगे-पीछे नहीं। आहाहा! तो उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? यह कहते हैं। क्रमबद्ध का निर्णय करते ही पर्याय का लक्ष्य छूट जाता है और ज्ञायक का लक्ष्य होता है, तब क्रमबद्ध का निर्णय (सच्चा) होता है। क्योंकि क्रमबद्ध है, वह पर्याय में है। द्रव्य में कुछ क्रमबद्ध है नहीं। द्रव्य में क्रमसर होना और अक्रम होना, ऐसा गुण है। समझ में आया?

कल तो थोड़ी यह बात की थी कि ३८वीं गाथा में ऐसा कहा है कि क्रम और अक्रम—दोनों पर्याय में हैं। कहा था? क्या? वह क्रम और अक्रम दूसरी चीज़ है। क्रम अर्थात् एक समय में एक गति (की पर्याय) होती है, दूसरे काल में दूसरी गति (की पर्याय होती है), तो यह गति क्रमसर है। परन्तु आत्मा में योग, लेश्या, कषाय एक समय में हैं तो यह अक्रम कहने में आता है। पर्याय अक्रमसर होती है, ऐसा है नहीं। पर्याय तो क्रमबद्ध ही होती है। आहाहा! परन्तु यह क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं, वहाँ पर्याय पर लक्ष्य नहीं रहता। आहाहा! ज्ञायक सर्वज्ञस्वभावी मैं हूँ... सर्वज्ञस्वभावी हूँ। 'सर्वज्ञ' यह प्रवचनसार में कहा है कि 'असाधारण ज्ञान को कारण ग्रहणकर' ऐसा संस्कृत पाठ है। (गाथा २१)।

जो असाधारण अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का है, यह असाधारण गुण है, उसको 'कारणपने ग्रहणकर' ऐसा पाठ है प्रवचनसार में। यहाँ तो याद आवे वह आवे... पार न मिले वस्तु का... आहाहा! ऐसी टीका है संस्कृत में। 'ज्ञान को कारणपने

ग्रहकर...' उसका अर्थ कि जब क्रमबद्ध का निर्णय करते हैं तो सर्वज्ञस्वभाव का कारण ग्रहण करके क्रमबद्ध का निर्णय होता है। और सर्वज्ञस्वभाव जो अन्दर में है... सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! इसमें यह दिगम्बर सन्तों की वाणी कहीं है नहीं। परन्तु गम्भीर बहुत है। एक-एक शब्द और एक-एक पद में गम्भीरता बहुत है। कहते हैं कि (प्रत्येक) समय में क्रमबद्ध होता है तो हमारा (उसमें) पुरुषार्थ कहाँ रहा?

यह कहा था (संवत्) १९७२ के वर्ष में। ७२ के वर्ष में। ६३ वर्ष हुए। उस समय चर्चा हुई थी, सम्प्रदाय में। उसमें थे न हम तो। हम तो ... सम्प्रदाय में आये नहीं। हम तो अन्तर में सत्य (लगेगा), वह लेंगे। ऐसा प्रश्न उठा (संवत्) ७२ में कि केवलज्ञानी ने देखा, ऐसा होगा। अपने क्या पुरुषार्थ कर सके? भगवान ने जब देखा (होगा), तब पुरुषार्थ होगा। हम पुरुषार्थ कैसे कर सके? ऐसा प्रश्न दो वर्ष चला (संवत्) ७० और ७१। नयी-नयी दीक्षा थी। २३-२४ वर्ष में दीक्षा ली थी। डेढ़ वर्ष बाद, २५ वर्ष की उम्र में ये चर्चा प्रगट की। तब तक बोले नहीं हम। सुनते थे। एक गुरुभाई था, वह बारम्बार ऐसा कहा करे। मैंने ऐसा कहा... भाई ने बताया था वहाँ रामजीभाई को। सरवा। विंछीयाथी पालियाद जाते सरवा है। ७२ के बात है। ७२। ६३ वर्ष हुए। ६० और ३। तुम्हारे जन्म से पहले। ४४ + १९ वर्ष हुए।

ऐस प्रश्न निकला तो कहा, प्रभु! तुम कहते हो यह बात मुझको नहीं बैठती। क्यों? केवली ने देखा ऐसा होगा, इतनी बात तो बराबर है। परन्तु पुरुषार्थ क्या करे? तो हम तो कहते हैं कि केवली जगत में हैं... इस जगत में एक समय की ज्ञान की पर्याय में तीन काल—तीन लोक जाननेवाले हैं, ऐसे अनन्त सिद्ध हैं। लाखों केवली हैं, महाविदेह में बीस तीर्थकर हैं। केवलज्ञानी हैं, एक समय में तीन काल—तीन लोक को जाननेवाली पर्याय की सत्ता है, तो इस सत्ता का स्वीकार है पहले? पश्चात् उसने देखा ऐसा होगा। यह (संवत्) ७२ की बात है। ६३ वर्ष पहले की। पूर्व का संस्कार था न!

वास्तव में यह बात तो ८० गाथा में चलती है। ८०-८१-८२ गाथा में प्रवचनसार में। यह (प्रवचनसार) तो हाथ में भी नहीं आया था ७२ में। ७८ में (हाथ में) आया।

परन्तु बात वही अन्दर से आयी। ८०-८१-९२ गाथा है न प्रवचनसार। 'जो जाणदि अरिहंतं द्रव्यगुणत्तपज्जयत्तेहिं' जो कोई अरिहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने 'सो जाणदि अप्पाणं..' अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य को जानना... यहाँ तो कहा है कि परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय जानना, वह तो विकल्प है। अरे! यह तो विकल्प है, परन्तु अपने आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय—तीन का विचार करना, यह भी विकल्प है। (परम) आवश्यक अधिकार, नियमसार। सब आधार देने जावे तो देर लगे। नियमसार, आवश्यक अधिकार में ऐसा लिया है कि भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय तो परद्रव्य है। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि परद्रव्य का विचार करेगा तो तेरी दुर्गति होगी। मोक्षपाहुड़ में १६वीं गाथा में ऐसा कहा।

भगवान ने ऐसा कहा, कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि हमारा लक्ष्य करेगा तो तुझे राग होगा और तेरी दुर्गति अर्थात् चैतन्य की गति नहीं होगी। यहाँ तो ऐसा कहा, 'जो जाणदि अरिहंतं द्रव्यगुणत्तपज्जयत्तेहिं, सो जाणदि अप्पाणं' ऐसा क्यों कहा? यह तो निमित्त से कथन किया। कि सर्वज्ञ की पर्याय एक समय में पूर्ण त्रिकाल (जानती) है, तो ये पर्याय निकली कहाँ से? वह सर्वज्ञशक्ति में से निकली है। सर्वज्ञ जो गुण है न अन्दर? ४७ शक्ति में है। उस सर्वज्ञ (गुण) में से यह सर्वज्ञ पर्याय निकली है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण और पर्याय का निर्णय करने जाते हैं, तो अपने द्रव्य में सर्वज्ञशक्ति है, उसका निर्णय होता है, तब उसको क्रमबद्ध और अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय व्यवहार से जानने में आये। सूक्ष्म बात है, भगवान!

क्रमबद्ध होता (है अर्थात्) जिस समय में जो पर्याय होनेवाली (है, वह) होगी। आगे-पीछे नहीं, पर से तो नहीं, परद्रव्य से तो नहीं। निश्चय से तो यहाँ यह लिया है कि क्रमबद्ध का जब निर्णय होता है तो अरिहन्त के केवलज्ञान का तो निर्णय उसको हुआ, वह तो पर है, परन्तु अपना निर्णय हुआ कि मैं सर्वज्ञस्वभावी हूँ। आहाहा! मेरी चीज ही सर्वज्ञस्वभावी है। और सर्वज्ञस्वभाव न हो तो पर्याय में सर्वज्ञपना आयेगा कहाँ से? समझ में आया? तो सर्वज्ञस्वभाव का जब निर्णय करते हैं, तब क्रमबद्ध का निर्णय आ गया, तब उसको पुरुषार्थ आ गया। केवली ने देखा, ऐसा होगा, तो पहले केवली

की श्रद्धा है? और केवली की श्रद्धा से पहले अपना सर्वज्ञस्वभाव है, उसकी श्रद्धा (है)? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो प्रभु का विरह पड़ा और आ पड़े, बापू! आहाहा! यह बात कहाँ से कब किस प्रकार आती है? वह भी... अन्तर से आती है। तैयार रट रखी है, ऐसा नहीं। कल क्या आया था, उसका भी ख्याल नहीं है। कल आया था व्याख्यान में वह सारी जिन्दगी में नहीं कहा, ऐसा आया था। आहाहा! तब क्या आया था, यह भी (याद नहीं)।

मुमुक्षु : अन्तर से आती है...

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! अन्दर से आती है बात।

यहाँ कहते हैं कि क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती नाम का अन्दर गुण है, तो सर्वज्ञस्वभाव का जब निर्णय करते हैं, तब द्रव्य का निर्णय करने में क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती नाम के गुण का निर्णय भी साथ में आ गया। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? जैसे सर्वज्ञ जगत में हैं (और) उन्होंने देखा ऐसा होगा, तो यह सर्वज्ञपर्याय आयी कहाँ से? यह उनकी सर्वज्ञशक्ति में से आयी। 'अप्याणं जाणहि' है न? मैं भी सर्वज्ञशक्तिवान हूँ, मेरा स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभाव है। कोई एक चीज़ का करना, वह तो है नहीं, परन्तु उसको जाने बिना रहे ऐसा (स्वभाव) नहीं। तीन काल—तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, उसे एक पर्याय में जानने की मेरी सामर्थ्य है, यह पर्याय सर्वज्ञस्वभाव में से आती है। कपूरचन्दजी! बहुत सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

तो ऐसा जब निर्णय करने जाते हैं, तो यह क्रमवर्ती—क्रमबद्ध में जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है (वह होगी)... उन्हें तो न बैठी। बड़ी चर्चा हुई थी वर्णीजी के साथ। १३ के वर्ष। यह बात न बैठी। (उन्होंने कहा), एक के बाद एक होगी, परन्तु यही होगी ऐसा नहीं। यही कहा कि जो (होनेवाली है), वही होगी। आगे-पीछे का कोई प्रश्न ही नहीं, इसके पीछे यही आयेगी—ऐसा ही है। (उनका कहना था कि एक के बाद दूसरी) आयेगी, परन्तु इसके बाद यही आयेगी, ऐसा नहीं। कहा, नहीं; इसके बाद यही आयेगी ऐसा नियम है। यह तो (संवत्) २०१३ के वर्ष की बात है। तुम थे या नहीं? नहीं थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... अपने परिणामों से... आहाहा! एक ओर ऐसा कहे कि पर्याय द्रव्य में है नहीं और द्रव्य पर्याय में आता नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि दो चीज़ है, अस्तित्व है। पर्याय का अस्तित्व है, द्रव्य का अस्तित्व है। दोनों अस्तित्व का हेतु नहीं होता। है, उसका हेतु नहीं। चाहे तो द्रव्य हो, चाहे तो गुण हो, चाहे तो पर्याय हो, है सत्... बन्ध अधिकार में है समयसार में। अहेतुक। पर्याय अहेतुक है। यह तो ठीक, परन्तु क्रमबद्ध का निर्णय करने से जो पर्याय उत्पन्न हुई—द्रव्य का लक्ष्य (करने से) जो पर्याय उत्पन्न हुई—निश्चय से उस पर्याय को द्रव्य की—ध्रुव की भी अपेक्षा नहीं। क्योंकि जो पर्याय है, वह सत् है। सत् को हेतु नहीं। आहाहा! उसका—ध्रुव का हेतु नहीं उसको (-पर्याय को)। बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा!

तो वह परिणाम अपने से... एक ओर ऐसा कहे कि उस परिणाम को ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। यहाँ कहे कि क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता... समझ में आया? द्रव्य की—ज्ञायक की दृष्टि हुई तो जो निर्मल परिणाम उत्पन्न हुआ, विकार की यहाँ बात नहीं। विकार परिणाम में आता है... यह कल कहा था। भाव नाम का एक गुण है आत्मा में... भाव नाम के दो गुण हैं। आत्मा में भाव नाम के दो गुण हैं। ४७ शक्ति में है। एक भावगुण का ऐसा अर्थ है कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह भावगुण के कारण से होगी। (भाव) गुण के कारण से होगी। उस गुण का अनन्त गुण में रूप है, तो अनन्त गुण में भी जिस समय में जो पर्याय होगी, वह भावगुण के कारण से (होगी) और भावगुण का अनन्त गुण में रूप है, वह अनन्त गुण के (अपने) कारण से है। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय अनन्त गुण की होनेवाली है....

यहाँ यह शब्द है कि अपने परिणामों से... 'परिणाम से' ऐसे नहीं कहा, 'परिणामों से'। अनन्त लिये हैं। है? बहुवचन है। पहली लाईन में। यह तो गम्भीर बात, बापू! दिगम्बर सन्तों की बात कोई अलौकिक है। यहाँ तो 'क्रमबद्ध' एक शब्द लिया है।

मुमुक्षु : क्रमबद्ध शब्द ही अलौकिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक है। आहाहा! और क्रमबद्ध का जिसको निर्णय हुआ,

उसको सर्वज्ञस्वभावी प्रभु का निर्णय हुआ। मैंने तो उस समय ही कहा था ७२ के वर्ष में। वह कहे कि भगवान ने देखा तब भव होगा, इतने भव होंगे। सुनो! बाहर से कहते थे। गुरु तो सुनते थे... गुरु सुनते थे। गुरु बोलते नहीं थे। गुरुभाई था वह कड़क था, बहुत अधिक कषायी।

कहा, भगवान का ज्ञान (हुआ) और अपने सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय हुआ, उसके केवलज्ञानी ने भव देखे ही नहीं है। समझ में आया? भव है ही नहीं। दो-चार भव हो, कदाचित् एक-दो हो, वह ज्ञान का ज्ञेय है। ७२ में कहा था। ६३ वर्ष पहले। वहाँ की (-महाविदेह की) बात थी न। भगवान तीन लोक के नाथ के पास थे। यह तो (पीड़ा) सहन नहीं हुई तो यहाँ जन्म हो गया है। वहाँ कहा कि सर्वज्ञ जगत में हैं, ऐसी सत्ता का जब स्वीकार करने जाता है तो उसका लक्ष्य पर्याय पर नहीं रहता, उसका लक्ष्य गुण-गुणी भेद पर नहीं रहता; उसका लक्ष्य द्रव्य पर जाता है—अभेद पर जाता है, तब क्रमबद्ध का निर्णय सच्चा होता है। तो केवलज्ञानी ने देखा, (ऐसा) होगा—(ऐसी) केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार किया (और) अपनी सत्ता का स्वीकार किया, वहाँ पुरुषार्थ आ गया। समझ में आ गया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! दूसरी बात। यह क्रम और अक्रम गुण है, उसमें तो क्रमसर—क्रमबद्ध ही पर्याय होगी। उस गुण का धरनेवाला गुणी प्रभु है, उस गुण की जब दृष्टि होती है तो क्रमवर्ती गुण के कारण से जो क्रमबद्ध आनेवाली पर्याय है, यह ही होगी। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े थोड़ा, परन्तु धीरे से पचाना। भाई! सूक्ष्म पड़े थोड़ा।

पश्चात् दूसरी बात। परिणामों से उत्पन्न होता है अर्थात् एक परिणाम नहीं है। आज सवेरे में प्रश्न किया था किसी भाई ने। एक समय में एक ही पर्याय उत्पन्न होती है? कहा, एक गुण की एक, परन्तु (सब मिलकर) अनन्त। 'परिणामों' लिया है न? तो अनन्त गुणों के परिणाम उत्पन्न होते हैं, एक समय में। द्रव्य में अनन्त गुण हैं और द्रव्य की जब दृष्टि हुई तो अनन्त गुण जितनी संख्या में हैं कि पार नहीं। आहाहा! आकाश के प्रदेश का अन्त नहीं। अलोक का अन्त कहाँ आयेगा? कहीं अन्त नहीं। अन्त कहाँ? लोक का अन्त है, अलोक का अन्त कहाँ? दसों दिशा में आकाश कहाँ

पूरा हुआ ? कहीं अन्त नहीं... अन्त नहीं... अन्त नहीं... अन्त नहीं... यह क्या है ? आहाहा ! भाई ! एक बार नास्तिक विचार करे तो उसे अस्ति की श्रद्धा हो जाती है कि आकाश के पीछे क्या है ?

एक बार बात चली थी। वह जामनगर का दीवान था न ! दीवान महेरबानजी। उसका पुत्र था, वह हमारे पास आया था ९१ में। ९१ में यहाँ आया था न तब। वह और एक डॉक्टर। दोनों आये थे। भाई ! देखो ! धुवाण गाँव है। इतना विचार तो करो, दूसरा बाजू में रखो। ये (आकाश) चीज़ है, वह कहाँ तक है ? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन आगे जायें। यह चीज़ अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन में नहीं तो बाद में क्या है ? और पीछे है तो उसका अन्त कहाँ ? आहाहा ! अन्दर मस्तिष्क घूम जाये, ऐसा है। मस्तिष्क अर्थात् दृष्टि। आकाश के प्रदेश का अन्त कहाँ ? अन्तिम छोर। अन्तिम आकाश का प्रदेश कहाँ ? 'छेल्ला' को क्या कहते हैं ? लोक के बाहर अन्तिम आकाश का प्रदेश कहाँ ? अन्तिम है ही नहीं। जितने प्रदेश हैं, उससे अनन्त गुने तो एक आत्मा में गुण हैं। आहाहा ! ये अनन्त गुण के परिणामों से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा। एक गुण की पर्याय नहीं। आहाहा !

श्रद्धा की पर्याय उत्पन्न होती है, आनन्द की पर्याय होती है, अरे ! जितने अनन्त गुण हैं, उन सबके व्यक्त—प्रगट परिणाम उत्पन्न होते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? जितनी गुण की संख्या है... द्रव्य पर दृष्टि जाने से, जितने गुण हैं संख्या में, उन सब गुण का एक अंश व्यक्त—प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन में अकेला सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय में आनन्द का अंश, वीर्य का अंश... जो आत्मा में वीर्यगुण है, उस वीर्यगुण का कार्य यह है कि स्वरूप की रचना करना। शुभ और अशुभराग की रचना करना, ये वीर्यगुण का कार्य नहीं। समझ में आया ? अपने में एक वीर्यगुण है—पुरुषार्थ नाम का एक गुण है। इस गुण का कार्य क्या ? यह ४७ शक्ति में है। स्वरूप की रचना। जब द्रव्य की अन्तर्मुख दृष्टि हुई तो जितने अनन्त गुण हैं, उनकी प्रगट अवस्था की रचना करता है, यह वीर्य का कार्य है। आहाहा ! पुरुषार्थ से होता है, ऐसे कहना है। यह पर्याय भी क्रमबद्ध में आती है, परन्तु पुरुषार्थ से होती है। समझ में आया ?

वीर्यगुण है न अन्दर? वीर्यगुण अनन्त पर्याय की रचना करता है, तो पुरुषार्थ आया या नहीं? उस समय जो राग आया है... यह आत्मा में ऐसा एक भावगुण है कि षट्कारकरूप से विकृत परिणति होती है, उससे रहित होना, ऐसा भावगुण है। ४७ गुण में है। आहाहा! ऐसी बातें अब इसमें... षट्कारकरूप से विकृति होती है पर्याय में, उस पर्याय से रहित... भाव नाम का गुण है तो (विकार से) रहितपने उसका परिणमन होता है, सहितपने नहीं। यह क्रमबद्ध का निर्णय करने में द्रव्य का निर्णय होता है, तो द्रव्य में एक ऐसा वीर्यगुण है कि जो निर्मलस्वरूप की रचना करे। राग की (रचना) करे, ऐसा उसमें है ही नहीं। आहाहा! हाँ, राग आता है, तो राग सम्बन्धी यहाँ ज्ञान करती है ज्ञान (पर्याय)। यह राग है तो उसका ज्ञान करता है, ऐसा भी नहीं। यह ज्ञान की पर्याय स्व का ज्ञान और पर का ज्ञान करती है। पर है तो पर का ज्ञान करती है, ऐसा भी नहीं। यह ज्ञान की पर्याय अपने स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य से प्रगट होती है। राग हो, परन्तु राग है तो यहाँ राग का ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं।

अपने ज्ञान की पर्याय में स्व-परप्रकाशक की सामर्थ्य होने से... अनन्त पर्याय में प्रत्येक पर्याय में वीर्य की रचना है। आहाहा! ये अनन्त परिणाम अपने पुरुषार्थ से प्रगट होते हैं और जिन परिणामों से (द्रव्य) उत्पन्न होता है, वे निर्मल हैं। मलिन की बात यहाँ है नहीं। आहाहा! और उस समय में जो राग है, उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने से अपने कारण से उत्पन्न होता है। राग है तो राग का ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। ऐसा कहा न? अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... राग ये अपना परिणाम है नहीं। आहाहा! राग, दया, दान आदि अपने स्वभाव का परिणमन है नहीं। क्यों? कि आत्मा में जितने गुण हैं, उसमें विकृति कर सके, ऐसा कोई गुण नहीं। अनन्त गुण पवित्रता की परिणति कर सके, ऐसे गुण हैं। कोई गुण विकृति कर सके ऐसा कोई गुण ही नहीं अनन्त में। आहाहा! विकृति तो होती है, वह पर्यायदृष्टि से निमित्त के वश होकर होती है। उसका भी ज्ञानी को... क्रमबद्ध का जब निर्णय हुआ, तब राग का ज्ञान, राग हुआ तो राग सम्बन्धी ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से... देखो! अनन्त अपने निर्मल परिणामों से...

जितने गुण हैं, उतनी अनन्त पर्याय आयी। एक गुण की एक, परन्तु अनन्त गुण की अनन्त पर्याय एक समय में हुई। सम्यग्दर्शन जहाँ हुआ, क्रमबद्ध का निर्णय हुआ, सर्वज्ञगुण का निर्णय हुआ, सर्वदर्शी, सर्वज्ञगुण का धरनेवाला द्रव्य का निर्णय हुआ, तो अनन्त-अनन्त जितने गुण हैं, सबमें निर्मलपने परिणाम उत्पन्न होते हैं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म भाई! समझ में आये, इतना समझना, बापू! यह तो परमात्मा तीन लोक के नाथ उनके घर की बातें हैं। उनके पेट की बातें हैं, यह तो। आहाहा!

मुमुक्षु : रचना करता है तो पुरुषार्थ सिद्ध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ है साथ में। पुरुषार्थ बिना कोई पर्याय ही होती नहीं। क्योंकि वीर्यगुण जो है, उस वीर्यगुण का अनन्त गुण में रूप है। तो अनन्त गुण में भी वीर्यशक्ति... वीर्य नाम की शक्ति का रूप है। जब द्रव्य पर दृष्टि हुई, तो अनन्त गुण में वीर्य से पर्याय प्रगट होती है। भगवान ने देखा ऐसा होगा, ऐसा निर्णय जब हुआ, तब अपने में अनन्त पर्याय पुरुषार्थ से उत्पन्न होती है। आहाहा! डाह्याभाई!

दूसरी बात। ये परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... परिणामों से उत्पन्न होता है, उस समय राग, अजीव आदि सारी बाह्य चीज़ हो, परन्तु उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने से उत्पन्न होता है। उस चीज़ को देखते हैं या चीज़ को जानते हैं, ऐसा नहीं। परचीज़ को देखता-जानता है, ऐसा है नहीं, यह तो अपने को ही देखता-जानता है। क्योंकि पर में और अपनी पर्याय में अत्यन्त अभाव है। दोनों में अत्यन्त अभाव है, तो यह पर्याय उसको देखती है, यह कहना तो व्यवहार से कथन है, असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। उस सम्बन्धी... लोकालोक को अपने द्रव्य सम्बन्धी जो अपनी (ज्ञान)पर्याय उत्पन्न हुई, ये अपने सामर्थ्य से अपने कारण से उत्पन्न हुई है। लोकालोक है तो उत्पन्न हुई ऐसा भी नहीं है। आहाहा! अब इतना सब जानना कठिन पड़े, बापू! परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... दूसरे के परिणाम को जीव नहीं कहा। पर्याय द्रव्य में जाती नहीं और द्रव्य पर्याय में आता नहीं। यहाँ यह कहा कि परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीवद्रव्य ही है। समझ में आया? ये अनन्त गुण का परिणामन...

आहाहा! जहाँ क्रमबद्ध का निर्णय करने जाते हैं तो ज्ञायकस्वभाव पर... 'अकर्तापना' ऊपर यह शब्द है। देखो! ऊपर। आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं... अकर्तृत्व (शब्द) है गाथा के ऊपर। अकर्तृत्व सिद्ध करना है। क्रमबद्ध में पर की पर्याय का कर्तापना है नहीं, ज्ञातापना सिद्ध करना है। अकर्तृत्व सिद्ध करना है उसका अर्थ, अस्ति से ज्ञातापना सिद्ध करना है। आहाहा! ज्ञातापना जब सिद्ध हुआ, तब राग का भी कर्ता नहीं और राग से ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया ?

यह अनन्त शुद्ध परिणामों से... अपने परिणामों से... ऐसा शब्द कहा न? पर का परिणाम नहीं, राग का भी नहीं। अपने परिणामों से... जो अपने गुण अनन्त हैं, उनकी पवित्र परिणति हो, ये अपने परिणाम हैं। व्यवहाररत्नत्रय है, ये अपना परिणाम नहीं और व्यवहाररत्नत्रय है, तब उसका ज्ञान यहाँ हुआ, तो यह व्यवहार का राग है तो यहाँ (ज्ञान) हुआ ऐसा भी नहीं। अपने ज्ञान की पर्याय इतनी सामर्थ्यवाली है कि पर की अपेक्षा रखे बिना स्व-पर को जानने का परिणामन अपने से होता है। सूक्ष्म बातें बहुत, बापू! आहाहा!

अपने परिणामों से... आहाहा! एक ओर कहे कि पर्याय द्रव्य की नहीं। आहाहा! पर्याय, पर्याय की है। न्यायग्रन्थ में भी आता है। आसमीमांसा। धर्मी और धर्म—दो भिन्न हैं। धर्मी (है, वह) धर्म नहीं और धर्म (है, वह) धर्मी नहीं। आहाहा! आसमीमांसा न्यायग्रन्थ है, उसमें भी ऐसा आया है। ... है ये परिणाम ही जीव है। आहाहा! है? बापू! वीतरागमार्ग वह कहीं हल्दी की गाँठ से गाँधी (पंसारी) हो जाये ऐसा नहीं। ये तो बड़ी गम्भीर चीज़ है। आहाहा! थोड़ा शास्त्र पढ़ा-भढ़ा इसलिए ज्ञान हो गया, ऐसा है नहीं, भाई! भगवान आत्मा का ज्ञान हो तो (सच्चा) ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया ?

अपने परिणामों से... एक बात। 'परिणामों से' (कहने में) अनन्त परिणाम लिये। बहुवचन। उत्पन्न होता हुआ... उत्पन्न होता हुआ जीव ही है... ये जीवद्रव्य ही है। ये पर्याय जीव की है, तो जीवद्रव्य ही है। आहाहा! ऐसी बात है। अरे प्रभु! आत्मा में ताकत है, एक क्षण में केवलज्ञान लेने की सामर्थ्य है। उसको ऐसी बात समझ में न

आवे, ऐसा कलंक नहीं लगाना। आहाहा! यह कलंक है। अपने को नहीं जान सकता, ऐसी बात न कहना, प्रभु! आहाहा! केवलज्ञान पूरे तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसी पर्याय एक क्षण में प्रगट होती है—एक समय में प्रगट होती है। आहाहा! अपने सामर्थ्य से द्रव्य का लक्ष्य करने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है, यह मोक्ष है। इस मोक्ष के मार्ग से मोक्ष उत्पन्न हुआ, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? मोक्ष तो अभाव है—व्यय है और व्यय की अपेक्षा उत्पाद को है नहीं। आहाहा! ये उत्पाद उत्पाद से (हुआ)। बहुत कहो तो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुआ ऐसा कहने में आता है। इस मोक्षमार्ग का तो व्यय-अभाव हो जाता है। वरना केवलज्ञान मोक्षपर्याय है, वह भाववाली है। ये भाव उत्पन्न कहाँ से हुआ? कि द्रव्य में से उत्पन्न हुआ, ऐसा एक अपेक्षा से कहने में आता है। द्रव्य कर्ता और पर्याय कर्म, यह भी उपचार से कथन है। आहाहा!

कलशटीका में आता है। कलशटीका है न? यह कलश है न? कलशटीका है न? अमृतचन्द्राचार्य। उसमें ऐसा आता है। निर्मल परिणाम अपना कार्य और आत्मा कर्ता, ये भी उपचार से (कथन) है। आहाहा! अरे भगवान! तेरी बलिहारी तो अन्दर है, तुम तो भगवान हो। चैतन्य हीरा तेरे हीरे की कीमत कहाँ? आहाहा! 'बड़ा बड़ाई बोले नहीं, बड़ा न बोले बोल, हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल'—ऐसा कहते हैं। ऐसे भगवान (आत्मा) की कीमत करने नहीं जाना, बापू! ये तो कीमत बिना की चीज़ है। यह तो महाचीज़ है। आहाहा! बापू! यह कोई साधारण चीज़ नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान कोई साधारण चीज़ नहीं। इसके बिना सब ले ले, व्रत ले लो, प्रतिमा ले लो—ये सब धूल है। आहाहा! मूल चीज़ का जहाँ ठिकाना है नहीं, उसमें व्रत, तप, पूजा, प्रतिमा और भक्ति आयी कहाँ से? यह सब तो राग है। यह धर्म का कारण है, (ऐसा मानना) तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... आहाहा! जीव है, ऐसा भी नहीं कहा। जीव ही है... संस्कृत में है 'जीव एव' संस्कृत में है 'जीव एव'। जीव ही। प्रभु! तुम कहते थे कि परिणाम में द्रव्य नहीं आता (और) तुम तो परिणाम को द्रव्य कहते हो। भाई! पर से भिन्न और अपने परिणाम से अभिन्न है। अभिन्न का अर्थ, परिणाम द्रव्य में एकमेक होता है, ऐसा नहीं। अभिन्न का अर्थ, परिणाम परिणामी

में अभेद होता है—एकमेक होता है, ऐसा नहीं। यह (परिणाम स्व)सन्मुख हुआ तो पर से विमुखता हो गयी, तो परिणाम आत्मा में अभेद हुआ, ऐसा कहने में आया। आहाहा! ऐसा मार्ग तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव... अरे! जिन्हे सुनने को न मिले, वे विचारे कब और बैठे कब? बापू! और ऐसे मनुष्यदेह चला जाता है। उसकी मृत्यु का जो समय है, वह तो निश्चित है। जितने दिन जाते हैं, वह मृत्यु के समीप जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपने परिणामों से... अपने परिणामों से...** ये अपने परिणाम में निर्मल लेना, विकारी नहीं लेना। विकार होता है, पर जहाँ द्रव्य की दृष्टि हुई, उसमें भाव नाम का गुण है, उस कारण से विकार से रहित परिणमन (हुआ), वह उसका है। विकार का जो ज्ञान हुआ, विकार की श्रद्धा हुई, ये हुई अपने से। विकार है तो ज्ञान हुआ और विकार है तो श्रद्धा हुई—ऐसा नहीं। यह श्रद्धा और ज्ञान हुआ, यह अपना परिणाम है। राग अपना परिणाम नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। कल आया, उसका यही सब आवे कहीं? आहाहा!

जीव ही है... आहाहा! एक ओर प्रभु ऐसा कहे कि परिणाम ध्रुव की अपेक्षा से नहीं (होते)। १०१ गाथा, प्रवचनसार। जो परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसको ध्रुव की अपेक्षा नहीं, उसको व्यय की अपेक्षा नहीं, ध्रुव को उत्पाद की अपेक्षा नहीं। आहाहा! अरे भाई! यह अवसर कब मिले? बापू! भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ का हृदय यह है, उनका अभिप्राय ये है। समझ में आया? आहाहा! ये अपने (परिणाम) **जीव ही है...** परिणाम उसका है न? उससे उत्पन्न हुआ है न? निमित्त से उत्पन्न हुआ है, ऐसा भी नहीं। व्यवहाररत्नत्रय राग है तो उससे यहाँ सम्यग्दर्शन हुआ ऐसा है नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का राग है, तो राग के कारण से उसका यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं। अपने ज्ञानगुण आदि जो अनन्त गुण-शक्ति है, ये अपने कारण से अनन्त (गुण की) पर्यायरूप परिणमन होता है। आहाहा! द्रव्य भी स्वतन्त्र, गुण भी स्वतन्त्र और अनन्त पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी स्वतन्त्र। आहाहा!

यह पर्याय उत्पन्न होती है, (जिसे) यहाँ **जीव ही...** कहा, (पर) निश्चय से ये

परिणाम षट्कारक से उत्पन्न हुआ है। जो निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि हुए, ये पर्याय का कर्ता पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, पर्याय का साधन पर्याय, पर्याय से पर्याय (हुई), पर्याय होकर पर्याय रखी, पर्याय के आधार से पर्याय है। आहाहा! अरेरे! क्या मार्ग प्रभु का और क्या लोग उसे माने? आहाहा! और सत्य बात आयी तो कहे, ऐ... एकान्त है। अरे प्रभु! आहाहा! यह सम्यक् एकान्त ही है। यह चीज ही ऐसी है। नय है, वह एक अंश का लक्ष्य ही करता है, तो एकान्त है। प्रमाण है, वह दोनों (नयों) का लक्ष्य करता है, यह अनेकान्त है। द्रव्य का भी ज्ञान और पर्याय का ज्ञान। यहाँ तो द्रव्य का ज्ञान हुआ, तब पर्याय का ज्ञान—निर्णय यथार्थ हुआ। क्रमबद्ध का निर्णय कब हुआ? जब द्रव्य का निर्णय यथार्थ हुआ, तो क्रमबद्ध का निर्णय हुआ। तब सर्वज्ञ जगत में हैं परद्रव्य, ऐसा भी व्यवहार से निर्णय उसको हुआ। समझ में आया? आहाहा!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है... आहाहा! कल तो बहुत कहा था, कहीं सब याद रहता है? कागज आया था कि कल बोला, वह फिर से बोलना, ऐसा। यहाँ तो आते-आते आवे तब आवे। आहाहा! अजीव नहीं... यह क्या कहा? कि जो अनन्त परिणामों से उत्पन्न हुआ... राग आया तो राग से यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। अजीव नहीं, ये अजीव से नहीं हुआ। राग ये अजीव है, शरीरादि अजीव हैं, तो अनन्त परिणाम जो उत्पन्न हुए, ये अजीव से नहीं हुए, राग से नहीं हुए। राग का ज्ञान राग से नहीं हुआ। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है। अब शिक्षण शिविर में बाहर से कहाँ से आये हैं लोग। ख्याल में तो लेना चाहिए न? यह मनुष्यपना चला जायेगा। आहाहा!

और विपरीत श्रद्धा थोड़ी भी यदि रह गयी... सातवें अध्याय में कहा न? मोक्षमार्ग प्रकाशक में सातवें अध्याय में। पाँचवें अध्याय में गृहीत मिथ्यात्व की बात की, छठवें अध्याय में कुगुरु-देव (की बात की)। सातवें अध्याय में, जैन सम्प्रदाय में जन्मे फिर भी मिथ्यात्व कहाँ रह जाता है, उसका अधिकार है। मिथ्यात्व का एक अंश शल्य भी संसार का कारण है। सातवाँ अध्याय, मोक्षमार्ग प्रकाशक। पहले शुरुआत में कहा। आहाहा! दिगम्बर जैन में जन्मे तो भी कहाँ मिथ्यात्व रह जाता है, उसकी खबर नहीं उसे। उसका अधिकार सातवाँ है।

यहाँ कहते हैं, जो अपना परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... क्रमबद्ध का निर्णय करने में द्रव्य के निर्णय में ये आया, ये राग से नहीं, ये अजीव से नहीं। यहाँ तो अजीव के साथ लेंगे। वास्तव में तो इस (-स्व) जीव की अपेक्षा से भगवान पंच परमेष्ठी भी जीव नहीं। क्या कहा? इस स्व(द्रव्य) की अपेक्षा से पर अद्रव्य है। तीन लोक के नाथ आदि पंच परमेष्ठी हैं, वे भी इस स्व(द्रव्य) की अपेक्षा से अद्रव्य हैं, इस स्व(क्षेत्र) की अपेक्षा से अक्षेत्र है, इस (स्व)काल की अपेक्षा से अकाल है और इस (स्व)भाव की अपेक्षा से अभाव है। आहाहा! इस द्रव्य की अपेक्षा से तो ये अद्रव्य है, तो इस जीव की अपेक्षा से पंच परमेष्ठी (स्व)जीव नहीं तो अजीव हैं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! समझने की चीज़ तो ये है। इसके बिना—ऐसा यथार्थ ज्ञान, यथार्थ श्रद्धा बिना—जो कुछ करे, वह सब संसार है।

शुभभाव, वह संसार है। दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रतिमा के परिणाम ये सब शुभ (भाव हैं), संसार है। संसार, कोई स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी संसार नहीं। संसार तो अपनी पर्याय में, अज्ञानी की अपनी पर्याय में रहता है। संसार कोई दूसरे में रहे? संसार तो विकृत पर्याय है। विकृत पर्याय तो आत्मा की पर्याय में होती है। संसार तो इसकी पर्याय में है। संसार कोई बाहर में है? स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी ये संसार है? कि नहीं, ये तो परचीज़ है। आहाहा! संसार तो, तेरी पर्याय में शुभराग और अशुभराग जो उत्पन्न होता है, यह संसार है। आहाहा! भारी कठिन बात, भाई! यह संसार अजीव है। समझ में आया? तो उस अजीव से यहाँ ज्ञानपरिणाम उत्पन्न हुआ या अनन्त परिणाम उत्पन्न हुए, ऐसा नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! आहाहा!

तीन लोक के नाथ की वाणी आती होगी वह कैसी होगी? आहाहा! सन्त ऐसी बात करे, छद्मस्थ मुनि ऐसी बात करे, तो सर्वज्ञ की वाणी—दिव्यध्वनि में कैसा (आता होगा)? इन्द्र भी पिल्ले के बच्चे जैसे समवसरण में सुनने बैठे। एक भवतारी, पहले स्वर्ग का इन्द्र है, वह एक भवतारी है। और उसकी मुख्य स्त्री—इन्द्राणी है, करोड़ों में एक मुख्य (होती) है, वह भी एकभवतारी है। दोनों मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे जब सुनने को जाते हैं तो वाणी कैसी होगी? प्रौषध करो, व्रत करो। यह तो कुम्हार भी कहता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रावण महीने के सोमवार आवे तो सब कहे कि अपवास करो ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवास करो सोमवार के । यह बैठो श्रावण के महीने में । श्रावण की एकम आज है । सिद्धान्त के हिसाब से तो श्रावण मास का एक पक्ष चला गया । (अषाढ़) कृष्ण ये श्रावण कृष्ण थी, अषाढ़ शुक्ल ये श्रावण कृष्ण थी । ये तो दूसरा पक्ष (शुरु हुआ) । श्रावण शुक्ल एकम दूसरा पखवाड़ा (-पक्ष) है । पहला पखवाड़ा चला गया । बाहर के हिसाब से अषाढ़ कहते हैं, सिद्धान्त के हिसाब से अषाढ़ कृष्ण की अमावस्या से श्रावण कृष्ण की अमावस्या थी । आज श्रावण शुक्ल एकम है । आहाहा !

अजीव नहीं... इतना आया, लो । कल का थोड़ा बाकी रह गया था यह जरा... **इसी प्रकार...** जीव की भाँति **अजीव भी...** अजीव भी... वह जीव लिया (इसलिए) अजीव भी... **क्रमबद्ध...** आहाहा ! उसमें भी क्रमसर पर्याय होनेवाली होती है । ये मन्दिर बना तो उसकी पर्याय से बना है । किसी गारीगर ने बनाया है, ऐसा है नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? आहार का एक ग्रास नीचे (थाली में) है, वह ऐसा ऊँचा होता है, यह उसकी पर्याय से होता है, हाथ से नहीं, इच्छा से नहीं । आहाहा ! अजीव भी **क्रमबद्ध...** आहाहा ! शरीर की ऐसी पर्याय रहे, वह क्रमबद्ध में आनेवाली है, वह आयी है । मैं ध्यान रखूँ तो बराबर रह सके, पथ्य आहार करूँ तो निरोगता रहे, ये बात सब (झूठी है) । आहाहा ! दवा ये परद्रव्य की पर्याय को निरोग करे, यहाँ मना करते हैं । क्योंकि निरोगता उसकी—शरीर की पर्याय का क्रम है तो होता है ।

मुमुक्षु : तो पूरा आयुर्वेद खोटा पड़े ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये व्यवहार कहा । आयुर्वेद में... वैद्य की दवा करने से (रोग) मिटता है, ऐसा आया है अकलंकदेव में । यह तो व्यवहारनय का कथन है ।

एक द्रव्य की पर्याय दूसरे द्रव्य को कभी छूती नहीं । तीसरी गाथा समयसार की । एक द्रव्य अपने गुण-पर्याय(रूप) धर्म को चूमता है । टीका है । प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायरूपी धर्म को छूता है, परद्रव्य को कभी छूता ही नहीं । यह आत्मा है (इसने) कभी कर्म को छुआ भी नहीं । इस शरीर को भी आत्मा ने कभी छुआ नहीं । शरीर को आत्मा को छुआ नहीं, आत्मा को शरीर को छुआ नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? यह

लकड़ी ऊँची होती है, देखो! तो कहते हैं कि क्रमबद्ध पर्याय से ऐसे ऊँची हुई है। अँगुली का आधार है तो ऊँची हुई, अँगुली से ऊँची हुई—ऐसा तीन काल में है नहीं। आहाहा! परन्तु वह संयोग से देखता है। ये यहाँ (संयोग को) देखता है, यहाँ (स्वभाव को) देखता नहीं। लालचन्दभाई! ये यहाँ देखते हैं। यहाँ (स्वभाव) देखे तो उसकी पर्याय यहाँ थी (-स्वयं से) है। परन्तु यह देखे हैं कि जो यह है तो... परन्तु वह तो दूसरी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया ?

अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से... इसमें भी बहुवचन आया। अजीव बहुत हैं न? बहुत अनन्त है। सब अनन्त... आहाहा! ये पासडा (-पसली) है न पासडा? वो नीचे की (हड्डी के) आधार से नहीं रहा। एक-एक परमाणु अपने षट्कारक आधार से परमाणु रहा है, पर के आधार से नहीं। यह वह कौन माने ?

मुमुक्षु : संयोगदृष्टिवाला न माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग (दृष्टि) वाला न माने। वे संयोग से देखते हैं। यह अपने से रहा है, यह नहीं देखते।

मुमुक्षु : यह खम्बा बनाया, वह किसने बनाया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने बनाया ? पर्याय को बनाया है। जड़ की पर्याय से खम्बा बना है। यह पुस्तक बनती है तो जड़ की पर्याय से बनती है। आहाहा! अक्षर लिखते हैं, तो ये अक्षर इच्छा से तो नहीं हुए हैं, परन्तु कलम से भी नहीं हुए हैं। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसी प्रभु की पुकार है, तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की पुकार है। अजीव परमाणु की प्रत्येक गुण की पर्याय जिस समय में होनेवाली होती है, वह अपने से होती है, पर के कारण से होती नहीं। आहाहा!

इसका भी विवाद था न? १३ के वर्ष में चर्चा बहुत हुई थी। यहाँ भी ७१ के वर्ष से हम कहते हैं। ७१ के वर्ष, ६४ वर्ष पहले। कि विकार अपने में कर्म से होता नहीं। ७१ के वर्ष से। हमने तो लाठी में कहा था। यह प्रश्न वर्णीजी के साथ चला। वर्णीजी कहे, ऐसा नहीं है, कर्म से विकार होता है। सर्वदा (होता है), किसी भी समय निमित्त से नहीं होता है, ऐसा नहीं। कहा, तीन काल—तीन लोक में निमित्त से होता नहीं।

अलग बात है।भाई! आहाहा! परद्रव्य की पर्याय... एक परमाणु की पर्याय दूसरे परमाणु की पर्याय को छूता नहीं, करता नहीं। तो परमाणु की पर्याय जीव करे ऐसे कैसे बने? क्योंकि अजीव का परिणाम उत्पन्न होता है, वह अजीव ही है। आहाहा!

ये अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से... आहाहा! इस क्रमबद्ध में महा भगवन्त विराजते हैं (अर्थात्) क्रमबद्ध का निर्णय करने से भगवान (आत्मा) नजर में आता है, तब क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय होता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! अजीव भी क्रमबद्ध... आहाहा! यह पुस्तक है, यह घोड़ी के आधार से रही है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। यह परमाणु अपनी पर्याय के अपने आधार से, अपने कारण से पर्याय में है। परमाणु अपनी पर्याय में अपने कारण से है। पर के कारण से परमाणु नहीं। एक परमाणु दूसरा... सिद्धान्त में ऐसा (आता) है कि दो गुण अधिक हो... यहाँ तीन गुण हो और दूसरा (परमाणु) पाँच गुण हो, (तो पहला) पाँच गुण (रूप) हो जाता है, लो। तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा है। यह तो निमित्त का कथन है। परमाणु में पंच गुण स्निग्धता की पर्याय है और दूसरे परमाणु में तीन गुण की है। यहाँ पाँच गुण (वाला) यह जाये तो (दूसरा) पाँच गुण (रूप) हो जाता है। तो पाँच गुण के मिलने से पाँच गुण होता है, ऐसा नहीं। क्रमबद्ध में पाँच होने का काल उसका है, तो पाँच (गुणरूप) हुआ है। आहाहा! विशेष आयेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल २, बुधवार, दिनांक-२५-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-५

समयसार, सर्वविशुद्ध अधिकार। यह अधिकार मोक्ष अधिकार की चूलिका है। चूलिका का अर्थ यह है कि पहले कहा हुआ है, वह भी कहेंगे और नहीं कहा, वह भी विशेष कहेंगे। मोक्ष अधिकार की यह चूलिका है। इसमें स्पष्ट बहुत आया है। कोई प्रश्न करे कि १४वीं गाथा में, ३८वीं गाथा में—उसमें सब आया है। १४वीं गाथा में यह कहा कि अपना भगवान आत्मा अबद्ध है। राग से बन्ध नहीं, कर्म से बन्ध नहीं, एक पर्याय जितना नहीं। यह बात यहाँ आती है। भगवान (आत्मा) अबद्धस्पृष्ट है। अबद्धस्पृष्ट में नास्ति से कथन है। अस्ति से कहो तो मुक्तस्वरूप ही भगवान अन्दर है। द्रव्यस्वरूप... जो द्रव्य-वस्तु है, यह तो मुक्तस्वरूप है। उसे अबद्ध कहकर मुक्तस्वरूप का भी ज्ञान करते हैं, मुक्तस्वरूप की प्रतीति करते हैं, मुक्तस्वरूप का अनुभव करते हैं, वे सारे जैनशासन का अनुभव करते हैं। यह १५वीं गाथा में कहा है। समझ में आया ? तो उसमें भी सब आ गया है। १४वीं, ३८वीं...

(गाथा) ७३ में भी यह कहा कि एक समय की पर्याय... पर से तो भगवान भिन्न ही है, राग से भी भिन्न है। अपनी जो धर्म की निर्मल पर्याय, वह स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है, वह षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न होती है, द्रव्य से भी नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ कहा कि अपना आत्मा क्रमसर अपने निर्मल परिणाम से उत्पन्न होता है। वस्तु तो त्रिकाल वस्तु है। त्रिकाल निर्मल शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, शुद्ध बुद्ध सिद्धस्वरूप प्रभु। शुद्ध है, बुद्ध है, ज्ञान का पिण्ड है और 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! उसमें षट्कारक की परिणति जो पर्याय में है, धर्म की, हों! विकार की नहीं, पर की तो नहीं। अपनी पर्याय में धर्म की परिणति—चैतन्य शुद्ध भगवन्त का अनुभव, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान, उसमें लीनता, यह पर्याय अपने षट्कारक से उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया ?

(गाथा) ७३ में कहा, वही यहाँ कहा। 'अपने परिणामों से उत्पन्न होता है' उसका अर्थ, वो परिणाम भी निर्मल षट्कारक से उत्पन्न होते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात

है भाई! वीतराग का धर्म वीतरागस्वभाव से उत्पन्न होता है। वीतरागस्वभाव(रूप) वो अपना परिणाम है, वह परिणाम कहाँ से उत्पन्न हुआ? कि त्रिकाली वीतरागस्वभाव है, उसके आश्रय से हुआ। समझ में आया? यह तो पहली लाइन के थोड़े शब्द... **जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से...** द्रव्य तो द्रव्य है ही, परन्तु उसकी जो निर्मल पर्याय होती है, वह भी क्रमबद्ध अपनी पर्याय के काल में वह पर्याय का जन्मक्षण है। यह पर्याय का उत्पत्ति का काल है। आहाहा! १०२ गाथा, प्रवचनसार।

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... 'परिणामों से उत्पन्न होता हुआ' ऐसा क्यों कहा? कि परिणाम द्रव्य की पर्याय है, इस अपेक्षा से कहा, बाकी 'द्रव्य से उत्पन्न होता है' (ऐसा कहना) यह भी व्यवहार है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! **अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है...** आहाहा! अपने को केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह अपने परिणाम से उत्पन्न होता है। चार घाति (कर्मों) का नाश होता है तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसे दर्शनमोहनीय कर्म एक है, उसका अभाव होता है तो यहाँ सम्यक् की पर्याय होती है, ऐसी अपेक्षा भी नहीं। आहाहा! ऐसे अपने में, आत्म सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य आत्मा का साक्षात्कार (अर्थात्) जैसा आत्मा है, ऐसा ज्ञान में आकर, अनुभव में आकर प्रतीति की और फिर उसमें लीनता होती है, वह भी अपने द्रव्य के आश्रय से लीनता होती है। परन्तु यह लीनता भी वास्तव में तो अपने षट्कारक के परिणामन से लीनता उत्पन्न होती है। आहाहा! द्रव्य से उत्पन्न होती है, यह भी एक व्यवहार सम्बन्ध बताना है। आहाहा! बहुत बात सूक्ष्म है। यह बात चार दिन चली थी, आज पाँचवाँ दिन है। यह तो गम्भीरता की बात है। पार नहीं उसका। अमृतचन्द्राचार्य की टीका और कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक। एक-एक श्लोक में गम्भीरता का पार नहीं।

यहाँ दूसरा आया। **इसी प्रकार अजीव भी...** जैसे जीव भी अपनी पर्याय के क्रमकाल में—अपनी उत्पत्ति के काल में—अपने परिणाम से उत्पन्न होता है, ये परिणाम यहाँ निर्मल लेना, मलिन नहीं। क्योंकि द्रव्य में अनन्त गुण होने पर भी, कोई गुण विकृति करे पर्याय में, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु अपनी पर्याय से जो उत्पन्न होता है तो अजीव भी अपनी पर्याय से क्रमसर उत्पन्न होता

है। आहाहा! समझ में आया? यह अँगुली चलती है ऐसे, तो क्रमबद्ध पर्याय में स्वकाल में होने की क्रिया का परिणाम होना था तो हुआ है। आत्मा से हुआ है, आत्मा ने ऐसा किया तो अँगुली चलती है (ऐसा है नहीं)। भगवान की पूजा में स्वाहा... स्वाहा की भाषा की पर्याय अजीव में क्रमसर होनेवाली हुई है। सूक्ष्म बात। आहाहा! यह तुम्हारे पैसेवाले को तो सुनना... करोड़पति दो करोड़ रुपये। मन्दिर बनाया न मन्दिर? आठ लाख खर्चा। आठ लाख में पश्चात... हम वहाँ रहे तब तक (वहीं) रहे तो, स्टील पड़ा थी स्टील, उसमें चालीस लाख उत्पन्न हो गया। मुनाफे में चालीस लाख विशेष। आठ लाख खर्चा और चालीस लाख आये।

मुमुक्षु : अच्छा धन्धा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अजीव की पर्याय क्रम से आनेवाली थी तो आयी है, उसमें आत्मा को क्या? आहाहा!

यह तो यहाँ कहते हैं, **अजीव भी क्रमबद्ध...** यह पैसे की पर्याय उस समय ये क्षेत्र में आनेवाली थी... उस क्षेत्र में (आनेवाली) थी, उसमें मान ले कि मेरा पैसा है, वह तो मिथ्या(दृष्टि) मूढ़ है। आहाहा! कहो, माणेकचन्दभाई! यह तुम्हारे पैसेवाले को... पैसे की पर्याय, क्रमबद्ध में अजीव की जो पर्याय उस समय में यहाँ क्षेत्रान्तर होनेवाली है, ऐसी होती है। दूसरा प्राणी कहे कि मैंने राग किया, पुरुषार्थ किया तो पैसा कमाया, वह भ्रम अर्थात् अज्ञान है। आहाहा! **अजीव भी...** 'अजीव भी' क्यों कहा? जीव की बात पहले चली है न? तो अजीव भी... आहाहा! रोटी बनती है तो आटे की पर्याय उस समय रोटी (रूप) होनेवाली थी तो हुई है। स्त्री से हुई नहीं, तवा-तावडी से हुई नहीं, अग्नि से हुई नहीं। आहाहा! स्त्री की इच्छा रोटी (बनाने) की थी तो हुई है, ऐसा भी नहीं। गजब बात है। आहा! और वह आटा लेकर उसमें बेलन फिराते हैं, तो बेलन उसको छूता है, ऐसा भी नहीं। बेलन कहते हैं? यह बेलन से रोटी ऐसे चौड़ी होती है, ऐसा है नहीं। इसकी पर्याय क्रमबद्ध में ऐसी होनेवाली थी तो होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : देखता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखता है, यह तो संयोग से देखता है मूढ़। उसकी पर्याय से देखे तो उसकी पर्याय अपने से हुई है। देखता है संयोग से—बेलने से, अग्नि से। देखनेवाले की दृष्टि में अन्तर है। आहाहा!

मुमुक्षु : दरबार को तो इतना सब रुपया आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके पास रुपया आवे ? कहीं रुपया धूल में आवे ?

इनके पास तो दो करोड़ रुपये हैं। शान्तिप्रसाद अपने यहाँ आते थे, उसके पास चालीस करोड़। उसमें क्या है ? अभी एक वैष्णव सेठ, वहाँ मुम्बई आया था हमारे दर्शन करने को, (उसके पास) पचास करोड़ हैं। यह हमारे चिमनभाई के सेठ। चिमनभाई हैं न ? उसके यहाँ नौकरी करते थे। छोड़ दी। वह वैष्णव है और महिलाएँ हैं सब श्वेताम्बर जैन। और लड़का आदि सभी आदमी वैष्णव। यह घर में दो (धर्म)। स्त्री को प्रेम है... वह मनुष्य भी नरम है। थोड़ा सुनने को आये थे। वह वैष्णव है न ? (तो पूछा), महाराज ! कर्ता है या नहीं ? कर्ता है या नहीं ? ५० करोड़ रुपये। धूल में क्या है ? पचास... पाँच अरब हैं या धूल अरब है।

जड़ की पर्याय उस समय उस क्षेत्र में आने का क्रम था तो आयी है। उसके पुण्य से आयी है, ऐसा कहना ये भी निमित्त का कथन है। पूर्व का पुण्य है, वह तो जड़ की पर्याय है। यह (पुण्य का) परमाणु भिन्न पर्याय है और ये पैसे आते हैं, वह दूसरी पर्याय है। पुण्य से पैसा आया ऐसे कहना, यह भी निमित्त का कथन है। आहाहा ! बहुत बात... प्रभु का मार्ग। यहाँ तो प्रभु की भक्ति करते हैं, उसमें आवाज आती है 'स्वाहा', वह जड़ की क्रमबद्धपर्याय में होनेवाली (है तो) होती है। स्तुति करनेवाला ऐसा माने कि मैं यह भाषा करता हूँ, मैं स्तुति करता हूँ... अरर ! समझ में आया ? यह तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा ! सेठ नहीं आते बड़े भाई ? हरिशचन्द्रभाई। बहुत नरम हैं। वह तो जिनेश्वरप्रसाद सहारनपुर। मैं तो हरिशचन्द्र जबलपुर कहता था। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि शरीर की पर्याय भी जब जिस क्षेत्र में जाने की योग्यता है, वहाँ क्रमबद्ध होती है। समझ में आया ? यह कहते हैं, **अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से... अपने परिणामों से...** ये भी परिणाम उसको कहते हैं। पर्याय की दशा को

यहाँ परिणाम कहते हैं। परिणाम क्यों कहा? कि परि—समस्त प्रकार से, पर्याय के भेद... नियमसार में आया है। १४वीं गाथा में। 'परि समंतात् भेदम् इति गच्छतीति पर्यायः' ऐसा शब्द है नियमसार १४वीं गाथा। शुरुआत करते हैं न। है यहाँ नियमसार? नियमसार १४वीं गाथा है न? संस्कृत है। 'परि समंतात् भेदम् इति गच्छतीति पर्यायः' संस्कृत है। पर्याय किसको कहना? पर्याय किसको कहना? परिणाम क्यों कहा? परि—समस्त प्रकार से, नम गया। पर्याय अपने से हुई है। परिणाम... परिणाम... समस्त प्रकार से नमन अर्थात् उत्पन्न होना। यह अपने से (उत्पन्न) हुई है, द्रव्य से नहीं, गुण से नहीं, पर से नहीं। आहाहा! ऐसा यहाँ कहाँ सुनने को मिले? है संस्कृत है। १४वीं गाथा है न? अन्तिम में। 'परि समंतात्।' परि+याय। पर्याय क्यों कहा? क्रमबद्ध पर्याय—परिणाम क्यों कहा? 'परि समंतात् भेदम् इति गच्छतीति' पर्यायरूपी भेद उत्पन्न होता है द्रव्य में। 'भेदम् इति गच्छति इति पर्यायः' अर्थात् जो सर्व तरफ से भेद को प्राप्त हो, वह पर्याय है। समझ में आया?

तो यह परिणाम भी पर्याय है। तो द्रव्य में यह सर्वप्रकार से अपने परिणाम भेद होकर अपने से होता है। पर के कारण से अजीव की पर्याय होती है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! ऐसे कायोत्सर्ग लगाना, मैं ऐसा काउसग... शरीर की पर्याय क्रम में ऐसे होती है तो ऐसा होता है। उससे 'मैंने ऐसा किया', (ऐसा मानना) यह तो उसका अभिमान है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लगाते हैं? कोई लगाते नहीं। मानते हैं। अज्ञानी मानते हैं कि हम ऐसे करते हैं। भगवान की स्तुति भी चलती है तो वाणी की पर्याय से चलती है और क्रमसर पर्याय है, उससे चलती है। आहाहा! मन्दिर भी हुआ, प्रतिमा भगवान के ऊपर में... वह भी क्रमसर जड़—अजीव की पर्याय होने के कारण से परिणाम वहाँ हुआ है। उन परमाणु में 'भेदम् इति गच्छति' उस समय भेदरूप पर्याय की उत्पत्ति है तो क्रमसर उत्पन्न होता है। दूसरा जीव या दूसरा अजीव उसको बनाये, ऐसा तीन काल में होता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो थोड़ा... मैंने किया, मैंने किया, हमने किया, ऐसा मैंने किया, ऐसा मैंने किया... यहाँ तो प्रत्येक अजीब की पर्याय व्यवस्थित है। व्यवस्थित का अर्थ व्यवस्था। व्यवस्था का अर्थ विशेष अवस्था। व्यवस्था का अर्थ विशेष अवस्था। सामान्य परमाणु जो द्रव्य है, उसकी विशेष अवस्था को व्यवस्था कहते हैं। तो परमाणु की व्यवस्था द्रव्य में पर्याय से होती है। आहाहा! समझ में आया? यह सूक्ष्म बात है, भाई! अभी तत्त्व की फेरफार बहुत हो गयी है। मान लेते हैं कि हमारे धर्म होता है। भगवान की स्तुति की, भगवान को चावल चढ़ाया, केसर चढ़ाया। अब तो भगवान का अभिषेक करते हैं पंचामृत से। भगवान तो वीतराग हैं। मूर्ति को पंचामृत भी होता नहीं। आहाहा!

ये मूर्ति भी स्थापन हुई है, वह क्रमपर्याय से वहाँ स्थापन हुई है। स्थापन करने का भाववाला था तो क्रम में शुभभाव आनेवाला तो आया। इस शुभभाव से तो... सब क्रम में है। सब क्रम में है। भोपाल में थे न? भोपाल में गये थे न? पवैयाजी! भोपाल में पंच कल्याणक था तब आये थे न? ४० हजार मनुष्य थे। व्याख्यान—प्रवचन में ४० हजार। सब सुनते थे, परन्तु वह सब आनेवाली पर्याय थी तो आयी है। आहाहा! और भाषा की निकलने का काल है तो भाषा निकलती है। प्रभु! ऐसी बात है। यह जड़ है। जड़ क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता है। आहाहा! यह बात बैठे...

मुमुक्षु : निश्चय से तो ऐसा है, व्यवहार से...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से अर्थात् यथार्थ जैसी वस्तु की स्थिति है, ऐसा यह है। इससे विपरीत मानना, वह दृष्टि विपरीत है। आहाहा! ऐसा कि निश्चय से ऐसा है। तो व्यवहार से होता है या नहीं? स्पष्टीकरण कराते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि श्रीमद् ने एक बार कहा... श्रीमद् राजचन्द्र। तिनका के टुकड़ा करना, यह भी आत्मा में सामर्थ्य नहीं है। एक तिनका—तृण। तिनके के दो टुकड़े करना, ये आत्मा की शक्ति नहीं। तो टुकड़े की पर्याय क्रमबद्ध में होनेवाली है तो होती है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ तो अज्ञान का करे। माने कि मैं खेत करता हूँ, बैल को जोतता हूँ, बैल को चलाता हूँ। ये सब अभिमान मिथ्यात्व अभिमान है। आहाहा!

यह कहते हैं, इसी प्रकार अर्थात् जीव की पेटे—जीव की जैसे, **अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से...** आहाहा! 'परिणामों से' क्यों कहा? क्योंकि अनन्त परिणाम हैं न? प्रत्येक परमाणु में अनन्त गुण हैं, तो एक समय में अनन्त पर्याय उत्पन्न होती है। एक परमाणु में एक समय में अनन्त पर्याय (होती है)। क्योंकि अनन्त गुण हैं न? तो उसकी अनन्त पर्याय क्रमबद्ध में—क्रमसर में आनेवाली है, वह आयी है। आहाहा! ऐसा काम। निश्चय से ऐसे हैं, परन्तु व्यवहार से कर सकता है न? ऐसे कहते हैं। व्यवहार से बोलने में आता है। उसने कहा कि यह शहर मेरा। समझ में आया? गाँव मेरा, राजकोट मेरा। सरदार शहर... सरदार शहर नहीं, कौन सा गाँव? सहारनपुर के हम रहनेवाले। सहारनपुर दूसरी चीज़ है, तुम रहनेवाले दूसरी चीज़ हो। सहारनपुर में रहनेवाले। सहारनपुर दूसरी चीज़ है, तुम रहनेवाले दूसरी चीज़ हो। सहारनपुर में रहनेवाले तुम हो? तुम तो आत्मा में रहनेवाले हो। राग में रहनेवाले भी नहीं, तो शहर में रहनेवाले (कहाँ)? आहाहा! बहुत अन्तर है।

अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... आहाहा! पानी उष्ण होता है, अग्नि के निमित्त से, तो कहते हैं कि उष्ण होने के क्रम में पानी में उष्ण होने का पर्याय का काल था तो उष्ण हुआ, अग्नि से नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। सिद्धान्त तो यह है कि प्रत्येक अजीव पदार्थ में अपने स्वकाल में क्रमसर में आनेवाले परिणाम से वह परिणाम होता है। आनेवाला है और होनेवाला है, स्वकाल है। आहाहा! वास्तव में तो जो भी परिणाम (होता है) परमाणु में और अजीव में, वह षट्कारक से परिणामन होता है। वह परमाणु का परिणाम भी...

पंचास्तिकाय ६२ गाथा है। पंचास्तिकाय। उसमें, जीव और कर्म—दोनों (के परिणाम) अपने परिणाम से हुए हैं, ऐसा पाठ है। ६२ गाथा, पंचास्तिकाय। वह चर्चा हुई थी वर्णीजी के साथ विकार अपने से होता है, पर से नहीं। यहाँ तो अभी निर्मल पर्याय की बात चलती है। निर्मल पर्याय भी अपने से क्रमसर होनेवाली है, तब होती है। उसका अर्थ, धर्म की निर्मल पर्याय का आश्रय द्रव्य (कहना), यह व्यवहार है। तो द्रव्य पर दृष्टि जायेगी—पर्याय अपने द्रव्य की तरफ झुकेगी... आहाहा! पर्याय मुख बदलेगी पर्याय का मुख राग, पुण्य और दया-दान और विकल्प पर है, वह पर्याय मुख

बदलेगी, अपने द्रव्य की ओर मुख बदलेगी, तब उसको क्रमबद्ध में सम्यग्दर्शन और धर्म होता है।

मुमुक्षु : मुख कैसे बदलना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, उसको ऐसे करना है। मुख ऐसा है तो ऐसा कर डालना। समझ में आया ?

कोई भी पर का कर सके ऐसा हो तो, ये ऐसा है, (उसे) ऐसा कर दो। आहा! ऐसे था, ऐसे कर दो। ऐसे नहीं होती। समझ में आया ? ऐसा है... आहाहा! बात बहुत सूक्ष्म है, बापू! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा... अनन्त द्रव्य जैसे हैं... अनन्त-अनन्तपने कब रहेंगे ? अनन्त में एक द्रव्य की पर्याय का दूसरा कर्ता न हो तो अनन्त-अनन्तपने रहेंगे। जो दूसरा द्रव्य दूसरे की पर्याय का कर्ता हो तो इस पर्याय बिना का वह द्रव्य रहा। पर्याय बिना का द्रव्य रहता नहीं। एक (द्रव्य) पर्याय बिना रहा, दूसरा दूसरे का कर्ता हो तो वह पर्याय बिना का द्रव्य रहा। पर्याय बिना का द्रव्य रहे तो द्रव्य का भी नाश होता है। आहाहा! समझ में आया ? सेठ! ऐसी सूक्ष्म बात है। सेठ इतने भाग्यशाली कि शिविर में आते हैं, दुनिया से अलग जाति है।

यहाँ तो यह कहते हैं कि कोई भी रजकण या कोई भी परमाणु का स्कन्ध... ये स्कन्ध है, उसमें जो परमाणु है, ये परमाणु भी क्रमसर अपनी पर्याय से उत्पन्न होता है। ये स्कन्ध में आया है तो ऐसी पर्याय हुई, ऐसा नहीं। यह परमाणु की रक्त की... यह रक्त है न ? लोही को क्या कहते हैं ? खून। उसकी पर्याय हुई न, तो परमाणु यहाँ आया तो खून की पर्याय हुई ऐसा है नहीं। यह परमाणु की खून की पर्याय होने की योग्यता से क्रमबद्ध आनेवाली थी तो आयी है। आहाहा! प्रभु! तुम तो ज्ञाता-दृष्ट हो न! जानने-देखनेवाला कर्ता हो जाये तो मिथ्यात्वपना आ जाता है। आहाहा! तुम तो... ज्ञाता-अकर्ता सिद्ध करना है न ? यहाँ तो अकर्ता सिद्ध करना है। ऊपर है न। बताया था।

आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं... अमृतचन्द्राचार्य। अकर्तृत्व... वे (-अज्ञानी) ईश्वर को कर्ता कहते हैं, तो यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्य पर्याय का कर्ता नहीं। ईश्वर कर्ता तो है नहीं किसी चीज का, परन्तु चीज की जो पर्याय है, उस पर्याय

का द्रव्य कर्ता नहीं। दूसरा द्रव्य तो नहीं कर्ता... आहाहा! कठिन बात है, भाई! यह तो परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ने सर्वज्ञस्वभाव में ऐसी पदार्थ की मर्यादा-स्थिति देखी है, वह बात बात है। दुनिया माने या न माने, उसको—सत्य को संख्या की आवश्यकता नहीं है लाखों माने तो सत्य कहलाये, थोड़े माने तो असत्य कहना—ऐसा है नहीं। वह कहते हैं। आहाहा!

यह कोडियुं... स्त्री भरत भरती है न? भरत कपड़े में। तो कहते हैं कि ये पर्याय स्त्री के आत्मा ने किया ऐसा हराम है। भरत भरती है न कपड़े में? यहाँ व्यवस्थित कर दिया... वे (अज्ञानी) कहते हैं कि स्त्री ने किया, इसकी इच्छा हुई तो हुआ। ये बिल्कुल झूठ है। आहाहा! भरत भी अपनी पर्याय में क्रमबद्ध में होनेवाली पर्याय से होता है। आहाहा! क्या कहे? तोरण करते हैं न? तोरण... तोरण... उसमें दाना... हाथी बनाते हैं। मोती को... वह रचने की पर्याय स्त्री ने की कि उसकी अँगुली से हुआ (ऐसा है नहीं)।

मुमुक्षु :से खून निकलता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, अपने से खून की पर्याय निकलती है। आहाहा! देखो! यह अँगुली है न? यह अँगुली उसको अडी (-छुई) ही नहीं। ऐसे खड्डा हुआ, ये खड्डे की पर्याय क्रमसर परमाणु में होने(वाली) हुई है, उँगली से नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया? यह बात... परन्तु संयोग से देखते हैं, उसकी पर्याय को देखे तो... अँगुली दूसरी चीज़ है और वह हुआ दूसरी चीज़ है। यह संयोग से देखते हैं, परन्तु उसकी पर्याय उसमें (अपने में) उत्पन्न हुई, उस दृष्टि से तो देखते नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अभी तो गड़बड़ बहुत हो गयी है।

पुस्तक बनाना, वह भी (परमाणु की) अपनी पर्याय से होता है। पुस्तक हमने बनायी... आहाहा! आचार्य महाराज तो कहते हैं, यह टीका... हमने टीका बनायी, ऐसे मोह से न नाचो। हम तो ज्ञाता(-दृष्टा) हमारे स्वरूप में हैं। हमारे स्वरूप से बाहर निकलकर ये टीका की रचना हुई, (ऐसा है नहीं) और विकल्प आया है तो टीका की रचना हुई, ऐसा भी नहीं। विकल्प आया है तो विकल्प मेरा कर्तव्य है, यह भी नहीं। आहाहा! मैं तो ज्ञाता (हूँ)। अकर्ता सिद्ध करना है न? पर का तो कर्ता नहीं, परन्तु राग

का भी कर्ता आत्मा नहीं। दया-दान-व्रतादि का विकल्प आता है, परन्तु आत्मा कर्ता है, ऐसा नहीं। क्योंकि आत्मा पवित्र पिण्ड प्रभु है, यह विकार को क्यों करे? चक्रवर्ती राजा को मकान की धूल साफ करने को कहना कि चक्रवर्ती! धूल निकाल दे। इसी तरह भगवान आत्मा अनन्त पवित्र गुण का पिण्ड है, उसको दया-दान विकल्प का कर्ता बनाना, यह चक्रवर्ती को धूल निकालने को (कहने जैसी) बात है। आहाहा! यह दृष्टान्त आता है शास्त्र में। शास्त्र में सब भरा है। दिगम्बर शास्त्रों में दृष्टान्त और न्याय सब भरा है। जहाँ-जहाँ जैसे चाहिए, वहाँ-वहाँ सब भरा है।

क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... देखो! उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है... उस पर्याय को अजीव कहा। अजीव की पर्याय को अजीव कहा, जीव की पर्याय को जीव कहा।—ऐसा अभी लेना है। नहीं तो जीवद्रव्य है, यह पर्याय में आता नहीं, ऐसे अजीवद्रव्य है, वह पर्याय में आता नहीं। परन्तु वह पर्याय उससे हुई है, ऐसे बताना है। पर से नहीं हुई और क्रम से आनेवाली (थी वह) हुई है—आयी है, यह बताकर (कहा कि) अजीव का परिणाम अजीव है। आहाहा! ऐसे क्यों कहा? अजीव का परिणाम अजीव है अर्थात् दूसरे साथ में जीव हो तो उससे हुआ ऐसा है नहीं। यह इनकार करते हैं, देखो! अजीव ही है, जीव नहीं... है? 'जीव नहीं' ऐसा क्यों कहा? कि जीव संयोग में हो, तो उससे वह पर्याय जड़ की हुई है, ऐसा तीन काल में नहीं। आहाहा!

यह बात... पश्चात् सोनगढ़ का एकान्त है... एकान्त है, ऐसा लोग कहते हैं। कहो, प्रभु! भगवान कहते हैं (या सोनगढ़ कहता है?) किसकी बात है यह? आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थकरदेव सीमन्धर भगवान के श्रीमुख से निकली हुई वाणी है। यह कुन्दकुन्दाचार्य ने सुनी है और यहाँ आकर ये शास्त्र बनाया। आहाहा!

मुमुक्षु : आप उस समय थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : तभी वहाँ थे। सुनने को गये थे। यह बात इतनी... यह तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अजीव ही है... ऐसा लिया। एकान्त नहीं है न? ऐसे कहते हैं कि

कथंचित् अजीवपर्याय अजीव से हुई, कथंचित् जीव से हुई—ऐसे अनेकान्त कहो। यह अनेकान्त है नहीं, प्रभु! यह तो एकान्त है। यह कहते हैं कि अजीव की अपनी पर्याय से अजीव उत्पन्न हुआ, वह अजीव ही है... अजीव ही है... आहाहा! यह होंठ हिलते हैं तो अजीव की पर्याय अजीव ही है, जीव नहीं। ऐसे क्यों कहा? अन्दर जीव है तो उससे होंठ हिला है, ऐसा नहीं, इसलिए जीव नहीं। आहाहा! इतना अभिमान छोड़ना.... आहाहा!

मुमुक्षु : मुर्दा क्यों बोलता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुर्दा बोलता...? मुर्दा चलता भी है। सुना है?

रात को... हमको तो नजर पड़े न। हमारे बड़े भाई थे। वह ५७ के वर्ष में गुजर गये। बड़े भाई थे, बहुत सुन्दर थे, बहुत होशियार थे। मुम्बई का पानी लग गया था। ५७, संवत् १९५७। तब हमारी उम्र ११ वर्ष की थी। ११ वर्ष की। ४६ में जन्म है। रात को वह गुजर गये, हमने देखा था। रात्रि को उसमें सुलाये... वो कोश... कोश समझते हो? लोहे की कोश होती है न? क्या कहते हैं? वह यह लोहे की कोश नहीं होती? ये रखी छाती पर। क्योंकि मुर्दा खड़ा न हो जाये। मुर्दा भी खड़ा हो जाता है। यह मुर्दा भी... पर ऐसा होनेवाला हो तब... कोश... कोश को क्या कहते हैं? लोहे की होती है न लम्बी? खोदने की... हमने देखा है।

५७ के वर्ष। हम तो छोटी उम्र के थे। हमारी माताजी कहे, यहाँ से निकल जाओ। मामा के घर जाओ। मामा गृहस्थ थे, सब बहुत पैसेवाले थे। मामा थे पैसेवाला। कहा, यहाँ से चले जाओ। तुम नहीं देख सकते। यहाँ सोना नहीं। भाई गुजर गया है। मुर्दा रखा है तो यहाँ सोना नहीं। यह ५७ की बात है। कितने वर्ष हुए? ७८ वर्ष पहले की बात है। यह मुर्दा को रखते हैं ऐसा। बाकी तो मुर्दे की पर्याय ऐसी खड़ी होने की नहीं थी तो बाह्य निमित्त... परन्तु होने की थी और रखा तो नहीं हुआ, ऐसा भी नहीं।

यह हमने देखा है। ११ वर्ष की उम्र ५७ में। छप्पनिया का दुष्काल था न! ५६ में बड़ा अकाल (पड़ा) था। ५६ में बरसात नहीं थी। हमारी तो छोटी उम्र थी १० वर्ष की। बड़ा अकाल... बहुत दुष्काल... ऐसा दुष्काल कि हम लड़के नदी के पार गये, नदी को

देखने। एक ग्वाला खड़ा था। ग्वाला खड़ा था और गाय २५, ३०, ४०, ५० खड़ी थी। गायों की आँखों में आँसू... आँसू... ग्वाले को पूछा... भाई! चार-पाँच दिन से घास का एक तृण भी नहीं मिला गाय को। एक तिनका नहीं। (संवत्) ५६ के वर्ष में... पाँच इंच बरसात आयी थी पहले। बस, फिर नहीं आयी। ५६ की बात है। ग्वाला खड़ा था। भरवाड समझते हो? गायों का ग्वाला। ग्वाले की आँखों में आँसू। अरे! यह गाय... ३०-४० गाय। चार-पाँच दिन से एक तिनका नहीं मिला। कहाँ से लावे? घास ही नहीं उगी।

अभी भी ऐसा सुना है। (बरसात) खिंच गया न एक महीना। अषाढ़ शुक्ल तीन तक ११ इंच आ गयी है। अभी नहीं आयी। घास बिना बारह-चौदह पशु मर गये। थोड़ी-थोड़ी घास उगी है। खोदे तो खा सके। खोदने की शक्ति न हो, मर गये। पर इस समय में यह पर्याय होने की थी, इससे होती है। आहाहा! घास न मिला, इसलिए देह छूट गया, ऐसा है नहीं। देह की पर्याय छूटने की थी और देह में आत्मा रहा तो आयुष्य के कारण से रहा—यह भी है नहीं। आयुष्य जड़ है और भगवान आत्मा चैतन्य है। तो जड़ से आत्मा रह सके अन्दर में, ऐसा है नहीं। अपनी पर्याय की योग्यता से क्रमसर में शरीर में रहने की योग्यता है, इतने साल रहते हैं। जब योग्यता छूट जाती है, तब छूटकर स्वर्ग में चले जाते हैं। धर्मीजीव की (बात है)। समझ में आया?

आचार्य ने दृष्टान्त दिया है। मनुष्य में से स्वर्ग में (जाता है), यह दृष्टान्त अपना लिया है। क्योंकि आचार्य देह छोड़कर स्वर्ग में जानेवाले हैं। चार गति का दृष्टान्त है पंचास्तिकाय में, वहाँ यह लिया है। मनुष्य से स्वर्ग और स्वर्ग से फिर मनुष्य होकर... कुन्दकुन्दाचार्य आदि कितने सन्त तो केवलज्ञान पाकर मोक्ष जानेवाले हैं। ऐसी स्थिति है। यह मनुष्य का दृष्टान्त ऐसा लिया है। मनुष्य मरकर नरक या तिर्यच में जाते हैं, ऐसा नहीं लिया। मनुष्य मरकर स्वर्ग में जाते हैं, ऐसा लिया। क्योंकि अपनी बात की है। अपने क्रम से देह छूट जायेगा तो हमें क्रम से स्वर्ग की गति मिलेगी। केवलज्ञान है नहीं, पूर्ण प्राप्ति है नहीं तो देह तो मिलेगा, परन्तु यह जड़ के कारण से जड़ संयोग मिलेगा। अपनी योग्यता के कारण से वहाँ स्वर्ग में रहते हैं। श्रेणिक राजा भी अभी नरक में भी हैं... श्रेणिक राजा नरक में हैं नहीं, वे अपनी पर्याय में और गुण में हैं। आहाहा!

पर को कभी छुआ ही नहीं, तो पर में रहे, ऐसा कहाँ है ? बहुत कठिन... कठिन... भाई! समझ में आया ? एक ने तो प्रश्न किया था कि श्रेणिक राजा मरकर नरक में गये। देखो! नरकगति का उदय आया तो उन्हें जाना पड़ा। नरकगति बाँधी थी न पहली ? मुनि की असातना की थी। नरक का आयुष्य बँध गया। बड़ा आयुष्य बँध गया था। पश्चात् मुनि मिले और मुनि के पास समकित पाया। यह बहुत (लम्बी) स्थिति बँधी थी, यह तोड़कर ८४००० वर्ष की रह गयी। ८४००० वर्ष है। अभी भी (नरक में) हैं। पर अपनी पर्याय की योग्यता से (है)। गति का उदय है, उस कारण से वहाँ गये हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! अनुपूर्वी भी झूठी है। नामकर्म में ९३ प्रकृति में एक अनुपूर्वी प्रकृति है। ये अनुपूर्वी प्रकृति क्या है ? कि एक गति में से दूसरी गति में ले जाना। ऐसे कहते हैं, ये सब निमित्त से कथन है। आहाहा!

ये बैल है न ? नाथ, बैल को नाक में नाथ डालते हैं, (फिर) खींचते हैं। वैसे आनुपूर्वी खींचकर ले जाते हैं, ऐसा लेख है। यह तो आनुपूर्वी प्रकृति है, ऐसा निमित्त का ज्ञान कराने को (कथन) है। बाकी अपनी पर्याय की योग्यता से कर्म... है तो उस प्रकार से स्वर्ग में जाते हैं, नरक में जाते हैं। आहाहा! तो अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव ही है, जीव नहीं... यह अनेकान्त है। जीव से भी हो और अजीव से भी हो तो अनेकान्त (कहलाये)—यह अनेकान्त नहीं। आहाहा! कथंचित् अपनी पर्याय अपने से, कथंचित् पर से—ऐसा कहो तो अनेकान्त सिद्ध होता है—ऐसा है नहीं। जीव नहीं... जीव की पर्याय उसको (अजीव) उत्पन्न कर सके, ऐसा बिल्कुल है नहीं। क्यों ?

अब दृष्टान्त देते हैं। जैसे (कंकण आदि परिणामों से उत्पन्न होनेवाले ऐसे) सुवर्ण... सोना... सोना... सुवर्ण... कंकण आदि परिणामों से... कंकण, कड़ा, अँगूठी इत्यादि। परिणामों के साथ तादात्म्य है... आहाहा! सोना जो जेवररूप हुआ, उस जेवर (रूप) परिणाम से सोना तादात्म्य है। जैसे उष्णता के साथ अग्नि तादात्म्य है, ऐसे ज्ञान के साथ आत्मा तादात्म्य है—तत्स्वरूप है, ऐसे सुवर्ण कंकण (आदि) अपनी पर्याय से तादात्म्य है। पर से हुआ ही नहीं। सोने में से कंकण हुआ, वह स्वर्णकार से हुआ नहीं। आहाहा! क्योंकि उसके परिणामों से तादात्म्य है। इन परिणामों से सोना उत्पन्न हुआ है।

जेवर की अवस्था सोने से उत्पन्न हुई है; सोनी से नहीं, हथौड़ी से नहीं, नीचे ऐरण से नहीं। ऐसी बातें... कठिन लगे लोगों को। पूरे दिन ऐसा यह करते हैं, यह करते हैं व्यापार-धन्धा। कौन करता है? बापू! सब संयोग से दिखता है। बाकी संयोगी पर्याय तो उसके कारण से होती है। तुम मानते हो कि हमारे से ये हुई, वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। मिथ्यात्व संसार है, यह मिथ्यात्व ही आस्रव और संसार है। यह अहंकार निकालना (और) भेदज्ञान करना, वह अलौकिक बात है।

जड़ की पर्याय मेरे से नहीं और मेरी पर्याय जड़ से नहीं। आहाहा! ऐसे भेद करना... यहाँ कहा, **सुवर्ण का कंकण आदि परिणामों के साथ तादात्म्य है**। सोने में से जो जेवर होता है, ये जेवर परिणाम हैं। परिणाम के साथ सुवर्ण तादात्म्य है। परिणाम के साथ स्वर्णकार तादात्म्य है? इस जेवर के साथ ऐरण तादात्म्य है? इन परिणाम के साथ हथौड़ी तादात्म्य है? आहाहा! जेवर उत्पन्न हुआ है, वह हथौड़ी से नहीं, ऐरण से नहीं, सोनी से नहीं। आहाहा! पूर्व पर्याय से भी नहीं। एक समय में जो पर्याय क्रमबद्ध उत्पन्न हुई है, वह पूर्व की पर्याय से भी नहीं और निश्चय से तो सुवर्ण के द्रव्य-गुण से भी नहीं। आहाहा!

तादात्म्य कहा है न? उसी प्रकार सर्व द्रव्यों का... सर्व द्रव्यों का अपने परिणामों के साथ तादात्म्य है। जीव का परिणाम अपने आत्मा के साथ तादात्म्य है। अजीव का परिणाम अजीव से तादात्म्य है। एक परमाणु का परिणाम, वह परमाणु से तादात्म्य है। किसी भी चीज़ का परिणाम उस तत्त्व से ततरूप है, पर के साथ कोई सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! शिक्षण शिविर में ऐसा अर्थ निकालते हैं। यह है, बापू! अरेरे! अनादि काल से ८४ लाख में... भाई! भूल गया ८४ लाख के अवतार को...

मुमुक्षु : दूसरा पूछे कि उससे यह होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये दूसरा पूछे, न पूछे वह जाने। यहाँ तो वस्तुस्थिति यह है। यह दूसरा पूछे उसकी तो बात चलती है। यह हजारों लोगों में तो बात चलती है। पूछे (ऐसी) भाषा की पर्याय भी पूछनेवाले की क्रिया नहीं है। दरबार! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! परम सत्य की बात है। आहाहा! इस प्रकार जीव अपने परिणामों से उत्पन्न

होता है, तथापि उसका अजीव के साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता... क्या कहते हैं? कोई कहे कि जीव अपने परिणामों से तो उत्पन्न होता है न? इतना तो कारण और कार्य करता है न? जीव अपने परिणाम का कार्य तो करता है न? अपने परिणाम का कार्य करे तो दूसरे के परिणाम भी करे। जैसे ग्वाला एक गाय को चराने ले जाये, तो दूसरा कहे, मेरी गाय भी ले जा। ऐसा आता है। ग्वाला है न? ग्वाला। एक गाय को ले जाये तो हमारी गाय को भी साथ में ले जा। हमारे कहाँ... ऐसे अजीव का परिणाम होता है? समझ में आया?

उसमें दूसरे द्रव्य का भी परिणाम कारणरूप हो तो उसमें क्या है? आहाहा! देखो, प्रभु! आत्मा में एक अकार्यकारण नाम का गुण है। क्या कहा? ४७ गुण हैं न? उसमें अकार्यकारण नाम का एक गुण है। १४वाँ है। आहाहा! ४७ में १४वाँ है, अकार्यकारण। आत्मा पर का कार्य नहीं और आत्मा राग और पर का कारण नहीं। आहाहा! पीछे है ४७ शक्ति। है या नहीं? ११२ पृष्ठ? श्लोक... श्लोक... (शक्ति) १३। १४ में आया। 'अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता ऐसा एक द्रव्यस्वरूप अकारणकार्यशक्ति है।' है अन्दर? १४वीं है। १३ नम्बर बाद १४वीं। 'अन्य से नहीं किया जाता...' आहाहा! आत्मा में जड़ से कोई पर्याय नहीं की जाती और आत्मा में राग से सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं की जाती। आहाहा! 'अन्य से नहीं किया जाता...' 'अन्य से' में परद्रव्य और राग सब लेना। क्योंकि शक्ति का वर्णन है न? तो शक्ति के वर्णन में पर्याय निर्मल ही ली है। क्रम-अक्रम लिया है बाद में उसमें। अक्रम गुण और क्रम पर्याय, पर ये क्रम पर्याय निर्मल ली है। शक्ति का वर्णन है न? क्रम-अक्रम में यहाँ एक सी निर्मल पर्याय ही ली है। क्रम में राग... क्योंकि शक्ति है, वह वस्तु का गुण है। गुण को धरनेवाला द्रव्य है, वह पवित्र है और शक्ति भी पवित्र है, तो पवित्रता का परिणाम पवित्र है। समझ में आया?

राग का परिणाम आत्मा का है, ऐसा यहाँ है नहीं। शक्ति के वर्णन में शुरुआत में और बाद में दोनों जगह ऐसे लिया है। आहाहा! नय का अधिकार, प्रवचनसार में ४७नय का अधिकार लिया है, वहाँ लिया है ज्ञान कराने को। धर्मी जीव गणधर हैं, उनके भी

जरा विकल्प आया शास्त्र रचने का, तो उनका परिणमन है तो कर्ता कहने में आते हैं। आहाहा! परिणमन की अपेक्षा से कर्ता कहने में आता है। करनेयोग्य है, इसलिए कर्ता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? प्रवचनसार में ऐसा लिया है। कर्तानय है, भोक्तानय है। यहाँ यह नहीं लेना। यह यहाँ द्रव्यदृष्टि का विषय है। शक्ति का वर्णन है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : समयसार... या प्रवचनसार... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों, ज्ञान की प्रधानता से जाननेयोग्य चीज़ है, ऐसे मानना। दृष्टि की अपेक्षा से अपना परिणाम निर्मल ही होता है, ऐसा मानना।

आगे है, प्रश्न है आगे। 'जिसमें क्रम-अक्रम से प्रवर्तमान अनन्त धर्म हैं, ऐसा आत्मा ज्ञानमात्र किस प्रकार हैं?' उसमें है पहले यह बात। 'जिसमें क्रम-अक्रम से प्रवर्तमान अनन्त धर्म हैं,...' परन्तु यहाँ क्रम लेना निर्मल। यहाँ क्रम में मलिन न लेना। पहले शब्द है। पश्चात् भी है। यह बात तो बहुत बार सभा में १८ (बार) चल गया है। यह १९वीं बार चलता है। उत्तर है ?

'प्रश्न : जिसने क्रम-अक्रम से प्रवर्तमान अनन्त धर्म हैं, ऐसा आत्मा ज्ञानमात्र कैसे है?' वह तो ज्ञानमात्र ही है। 'परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त धर्मों के समुदायरूप से परिणमित एक ज्ञानमात्र भावरूप से स्वयं ही है।' समझ में आया? यह अनन्त शक्ति में क्रम तो निर्मल लिया है। दूसरी (जगह) पंचास्तिकाय में ६२ गाथा में लिया, वहाँ विकार की पर्याय स्वतन्त्र षट्कारक से परिणमती—होती है, ऐसा लिया है। वहाँ तो ज्ञेय अधिकार है तो ज्ञेय को बताना है। यहाँ तो दृष्टिप्रधान शक्ति का वर्णन है। शक्ति पवित्र हैं, सब ओर पवित्र को धरनेवाला प्रभु भी पवित्र द्रव्य है। पवित्र से क्रम में अपवित्रता आती है, यह बात है नहीं। आती है अपवित्रता, परन्तु वह अपवित्रता का ज्ञान करती है, यह ज्ञानपर्याय अपनी है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो कहा था न? भाव नाम का एक गुण है। भावगुण है। उसमें पीछे है। भाव है न? अन्दर शक्ति है। भावशक्ति है। देखो! ३३वीं। 'विद्यमान अवस्था युक्तपनेरूप भावशक्ति।' अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो, वह भावशक्ति। ३३वीं शक्ति है। इस

भावशक्ति के कारण से उसकी पर्याय निर्मल ही होती है। निर्मल की बात है यहाँ। मैं करूँ तो पर्याय निर्मल हो, ऐसा विकल्प भी जहाँ नहीं। आहाहा! जहाँ द्रव्य पर दृष्टि कर पर्याय झुक गई, द्रव्य में भाव नाम का गुण है, उस कारण से अनन्त गुण की पर्याय निर्मल प्रगट होती ही है। आहाहा! समझ में आया? एक भाव(गुण) यह लिया। एक भाव(गुण) दूसरा है। आहाहा! आगे है।

३९। देखो! 'कर्ता-कर्म आदि कारकों के अनुसार जो क्रिया...' यह विकार है। विकार पर्याय में होता है, 'उससे रहित भवनमात्रमय होनेवाली भावशक्ति।' दो प्रकार की शक्ति है। एक भावशक्ति, अनन्त गुण में भावशक्ति पड़ी है तो प्रत्येक गुण की एक समय में होनेवाली पर्याय होगी, होगी और होगी। मैं करूँ तो होगी, ऐसा है नहीं। यह एक भावशक्ति। और एक भावशक्ति, विकार का परिणाम षट्कारक (रूप) परिणामन होता है, उससे रहित वह भावशक्ति का फल है। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ३, गुरुवार, दिनांक-२६-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-६

समयसार, (गाथा) ३०८ से ३११। क्रमबद्ध की व्याख्या आयी न? क्रमबद्ध में पर का कारण-कार्य का अभाव होता है। विशेष स्पष्टीकरण अता है। उसका कारण वह है। क्या? कि जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता है... यह क्रमबद्ध में से निकाला। जब जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता है... क्रमबद्ध में उसका निश्चय (-निर्णय) जाता है ज्ञायक पर। यह बात यहाँ है। ज्ञायक पर दृष्टि हुई तो जीव अपने परिणामों के साथ तादात्म्य है। आहाहा! इस प्रकार जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता है... निगोद से लेकर सिद्ध, एक-एक समय के परिणाम... निर्मल की यहाँ बात है, हों! अपने परिणाम से जीव उत्पन्न होता है। आहाहा! परिणाम से उत्पन्न (होता है)। जीवद्रव्य तो है ही। परिणामों से उत्पन्न होता है, तथापि... ऐसे क्यों कहा? कि अपने परिणामों से तो उत्पन्न होता है न? इतना तो कार्य करता है न? अपने परिणामों से उत्पन्न होता है न? नहीं उत्पन्न होता, ऐसा तो है नहीं।

उसका अजीव के साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता... ऐसा कि अपने परिणाम से उत्पन्न होता है, तो पर का परिणाम भी करे। जो उत्पन्न न होता हो, कार्य न होता हो, तब तो पर का कार्य न करे। आहाहा! कार्य तो करता है। सूक्ष्म बात है। जीव अपने निर्मल परिणाम का कार्य तो करता है, तथापि पर का कार्य नहीं करता—ऐसा लेना है। समझ में आया? गम्भीर शब्द है कि अपने परिणामों से उत्पन्न होता है तथापि—तो भी... निर्मल परिणाम से तो उत्पन्न होता है। मैं शुद्ध चैतन्यघन ज्ञान आनन्दकन्द प्रभु हूँ, उसका (-मेरा) परिणाम तो आनन्द और शान्ति, यह उसका परिणाम है। यहाँ धर्म प्राप्त करने की बात चलती है अथवा क्रमबद्ध का जिसको निर्णय हुआ, उसकी बात चलती है। आहाहा!

जगत में प्रत्येक पदार्थ की अपनी अवस्था से व्यवस्थित व्यवस्था होती है। प्रत्येक पदार्थ की अपने परिणाम—अवस्था से व्यवस्था होती है। दूसरा परिणाम उसको करे तो उसकी पर्याय—व्यवस्था होती है, ऐसा है नहीं। तो यह सब व्यवस्थापक है न?

नहीं? यह प्रमुख है, व्यवस्थापक है। किसका व्यवस्थापक? भाई! जो द्रव्य अपने परिणाम से उत्पन्न होता है क्रम में, तो उसकी पर्याय की व्यवस्था, वही उसकी व्यवस्था है। आहाहा! दूसरा जीव उसकी व्यवस्था करे? दूसरा जीव भी अपने निर्मल परिणाम से उत्पन्न होता है, तो वह अपने परिणाम से उत्पन्न हो और दूसरे के भी परिणाम उत्पन्न करे—ऐसा नहीं होता।

तथापि... 'तथापि' लिया है। ऐसा कि अपना कार्य करे न? करता तो है या नहीं? करता है या नहीं? पलटता है या नहीं? तो फिर दूसरे को भी पलटावे। कहते हैं कि ऐसा होता नहीं। क्योंकि दूसरा द्रव्य भी अपने परिणाम से परिणमित होता है। दूसरा द्रव्य कोई पर्याय बिना का द्रव्य है, ऐसा द्रव्य है नहीं। आहाहा! (उसकी) पर्याय का कार्य करनेवाला कोई एक द्रव्य-परद्रव्य है, तो उसकी पर्याय का कार्य दूसरा जीव करे, ऐसा कभी होता नहीं। आहाहा! यह सब सेठिया धन्धा करे, व्यापार करे दुकान में धड़ाधड़। क्या करे? कर्ता होना तो मरना है। मैं करूँ... भगवान ज्ञायकस्वरूप प्रभु को राग का, पर का काम सोंपना... आहाहा! यह तो प्रभु की मृत्यु है अथवा उनका अनादर है। अनादर है, वह ही मृत्यु है। आहाहा! यह सब व्यापार करते हैं लोहे का। आहाहा! दो-दो करोड़ का स्टील (पड़ा था), उसमें भाव बढ़ गया तो चालीस लाख पैदा हो गये, लो। प्रसन्न होगा या नहीं?

वह पर्याय तो परमाणु, वहाँ क्रमबद्ध में आनेवाला परमाणु आया है, उसकी पर्याय के क्रमबद्ध में। दूसरे के कारण से पैसा आया वहाँ...

मुमुक्षु : उनके ही पास आया, दूसरे के पास नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके पास आया, वो तो उस समय कार्य की दशा और काल ही ऐसा था। पूर्व का पुण्य कहने में आया, वो पुण्य तो निमित्त है। पूर्व का पुण्य पैसे को खींचकर लावे—ऐसा है नहीं। बोलने में आता है कि उसके पुण्य के कारण से... शास्त्र भी ऐसा कहता है कि पुण्य का फल मिलता है।

पद्मप्रभमलधारिदेव भी कहते हैं कि प्रभु! दूसरे की ऋद्धि देखकर तुझे विस्मय होता है और तुझे इच्छा होती है कि आहाहा! करोड़पति, अरबपति, मैं भी होऊँ। तो

प्रभु! ये अरिहन्त की भक्ति कर तो उसमें पुण्य होगा और उससे मिलेगी वस्तु। तेरे को मिलेगी तो भी तुझे क्या लाभ है? आहाहा! तू तो भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु है, जिसमें अनन्त-अनन्त निर्मल गुण की खान है। इस खान की प्रतीति जिसको क्रमबद्ध के परिणाम में हुई... आहाहा! ये तो अपने परिणाम से उत्पन्न होता है। क्यों? कि प्रत्येक जीवद्रव्य में कर्ता नाम का एक गुण है... कर्ता नाम का गुण है। तो कर्ता होकर अपने परिणाम का कर्म अर्थात् कार्य करता है। आहाहा! कर्ता होकर... अपने निर्मल परिणाम की बात है, हों!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... क्रमबद्ध के निर्णय में ज्ञायक पर दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, इस सम्यग्दर्शन के कार्य का कर्ता कौन है। कि जीव में कर्ता नाम का गुण है। उस कर्ता (गुण) के कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई है। पूर्व की पर्याय से नहीं, निमित्त से नहीं, सुनने से नहीं। आहाहा! बहुत मंथन किया विकल्प से अन्दर, तो उससे प्राप्त होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! मंथन है, वह तो सब विकल्प है। आहाहा! अपने में कर्ता नाम का अनादि गुण है, उस कर्तागुण के कारण से उसकी सम्यग्दर्शन आदि पर्याय उत्पन्न होती है।

अथवा कर्म नाम का गुण है आत्मा में। ओहोहो! एक जड़कर्म है, एक नोकर्म है, एक राग का कर्म है, एक निर्मलपर्यायरूपी भावकर्म है, निर्मल... आहाहा! और एक कर्म नाम का गुण आत्मा में है। आहाहा! क्या कहा? आत्मा के अतिरिक्त अनन्त पदार्थ का कार्य होता है, यह भी उसका कर्म है। यह कर्म, पदार्थ और अपना परिणाम किया, यह परिणाम उसका कार्य है। कार्य कहो या कर्म कहो। एक बात। दूसरी—जड़कर्म है, उसको कर्म कहना, परमाणु अपनी पर्याय से कर्मरूप परिणाम है, यह भी कर्म है।—दो। तीसरा—राग-द्वेष का परिणाम करना यह भी एक कर्म है, भावकर्म। तीन। एक निर्मल परिणाम(रूप) कार्य हो, यह भी कर्म है—चार। और एक कर्म नाम का गुण आत्मा में है। आहाहा!

सूक्ष्म बात है, भाई! अरे रे! अनन्त काल में सत्य बात मिली नहीं (और) मिली तो रुचि नहीं। आहाहा! एकान्त... एकान्त लगे। व्यवहार... कुछ-कुछ राग की मन्दता

करने से होता है या नहीं? तो कहते हैं कि उसके कर्म नाम के गुण ने क्या किया? राग से जो हुआ, तो राग कर्ता, आहाहा! समझ में आया? और धर्मपर्याय कार्य (हुई) तो यह राग कर्ता (और धर्मपर्याय) कार्य (हो) तो कर्ता नाम के गुण का कार्य क्या है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। मुद्दे की बात को उसने कभी दृष्टि में लिया नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि कर्म इतने प्रकार का है। आहाहा! एक गुणरूपी कर्म, एक निर्मल पर्यायरूपी कर्म, एक रागरूपी भावकर्म, एक (द्रव्य) कर्मरूपी पर्याय जड़ की और एक पर के परिणामरूपी कर्म। आहाहा!

पर का कर्म आत्मा करता है या नहीं? कर्म का परिणाम जो है, उसको भी आत्मा करता नहीं और राग है, वह भी आत्मा का कर्तृत्व नहीं और निर्मल पर्याय का कर्ता है, वह भी उपचार से है। आहाहा! निर्मल परिणाम अपना कार्य और आत्मा कर्ता—ऐसा भी उपचार से—व्यवहार से कहने में आता है। कलशटीका में है। कलशटीका में है सब। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में कर्म नाम का गुण है... कर्म नाम का गुण है। जड़कर्म का नहीं, राग का नहीं, पर्याय का नहीं। आहाहा! जैसे भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी त्रिकाल है, आनन्दस्वभावी त्रिकाल है, ऐसे कर्मस्वभावी त्रिकाल है। आहाहा!

यअ सब सुना न हो, वहाँ पैसे-पैसे में न सुना हो। मन्दिर में आठ लाख खर्च किया, इसलिए धर्म हो गया (ऐसा माने), परन्तु पैसा खर्च सकता ही नहीं आत्मा। वह परमाणु की पर्याय का कार्य तो परमाणु का है, दूसरे का वह कार्य है ही नहीं। आहाहा! और यह पैसे के कार्य से मन्दिर का कार्य होता है, ऐसा भी नहीं।

मुमुक्षु : किसी का उपकार गिनता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब व्यवहार की बातें हैं। आहाहा! 'उपकार' आता है न? भाई ने लिया है न मोक्षमार्गप्रकाशक में आठवें अध्याय में? अरिहन्त ने उपकार किया है उपदेश देकर, मैं ये उपकार का... उल्लेख करता हूँ। आठवें अध्याय में है। मोक्षमार्ग प्रकाशक। खबर है न! आहाहा! हम उपकार करते हैं, ये तो निमित्त से कथन है। समझ में आया?

अभी तो बहुत चलता है न? यह चौदह ब्रह्माण्ड का नक्शा बनाकर नीचे लिखते हैं 'जीवानां परस्पर उपग्रहो।' परस्पर उपकार करते हैं। उपकार करते हैं, उसकी व्याख्या ऐसी है नहीं। जहाँ-तहाँ ये चल रहा है। 'उपकार' का अर्थ निमित्तपने है, इतना ज्ञान कराने को उपग्रह अथवा उपकार, ऐसे दो शब्द लिये हैं। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा ऐसे कहते हैं कि जीव अपने परिणाम को... परिणाम कहो या कर्म को या कार्य कहो। अपने कार्य से उत्पन्न होता है तथापि उसका अजीव के साथ, राग के साथ, कर्म के साथ, शरीर के साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता। ये जड़कर्म कार्य और आत्मा कारण, ऐसा सिद्ध नहीं होता। आहाहा! यह शरीर चलता है, ऐसी भाषा निकलती है, ये भाषा का निकलना कार्य और आत्मा कर्ता, ऐसा कभी सिद्ध होता नहीं। आहाहा!

उसका अजीव के साथ कार्यकारणभाव... यह तो कल कहा था न? आत्मा में अकार्यकारण नाम का गुण है। आत्मा में अकार्यकारण गुण है कि (जिससे) पर (द्रव्य) कर्ता और आत्मा की पर्याय कार्य, ऐसा तो होता नहीं, परन्तु राग कर्ता और निर्मल पर्याय कार्य ऐसा भी होता नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय कर्ता और सम्यग्दर्शन निर्मलपर्याय कार्य, ऐसा कर्ता-कर्म (सम्बन्ध) है नहीं। बहुत (हुआ तो) आत्मा कर्ता और निर्मलपर्याय कर्म ऐसे उपचार से दो भेद करते हैं, परन्तु व्यवहार राग... सबका यह लेख आता है। व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार तो करो, व्यवहार करो, करते-करते पीछे छोड़ दो। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले तो करना पड़ता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले और बाद में करे कौन? आहाहा! अपने परिणाम से उत्पन्न होनेवाला प्रभु (आत्मा है) और दूसरे परिणाम से उत्पन्न होनेवाला यह (दूसरा) द्रव्य है। परिणाम बिना का तो कोई द्रव्य है नहीं अथवा परद्रव्य अपने कार्य बिना का तो है नहीं। उसका (अपना) कार्य है, तो आत्मा अपना कार्य करता है और पर का भी कार्य करता है? तो कार्य बिना का द्रव्य हो गया। पर्याय बिना का द्रव्य हो गया। पर्याय बिना का द्रव्य होता ही नहीं कभी। छन्नलालजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! आहाहा!

भगवान की वाणी कर्ता और आत्मा की ज्ञानपर्याय कार्य, ऐसा है नहीं। समझ में

आया? क्या कहते हैं? फिर से लेते हैं। वाणी जो भगवान की दिव्यध्वनि है, वह तो परमाणु की पर्याय अपने से उत्पन्न हुई है। वह भगवान से भी नहीं। भगवान की दिव्यध्वनि भगवान से भी नहीं (होती)। आहाहा! भगवान तो निमित्त कहने में आते हैं। लोकालोक को केवलज्ञान निमित्त कहने में आता है और केवलज्ञान में लोकालोक को निमित्त कहने में आता है। निमित्त कहने में आया, परन्तु निमित्त से हुआ है, ऐसी चीज़ है नहीं। केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है तो केवलज्ञान से लोकालोक उत्पन्न हुआ है? और लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त है तो लोकालोक से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई है? यह सर्वविशुद्ध (अधिकार) में पाठ है। सर्वविशुद्ध (अधिकार) समयसार। अन्तिम अधिकार में है। केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है और लोकालोक केवलज्ञान को निमित्त है। सर्वविशुद्ध अधिकार में पीछे है। उसका अर्थ क्या? कि दूसरी चीज़ है, इतना ज्ञान कराया। केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तो ये लोकालोक उसका कारण—कर्ता और आत्मा का केवलज्ञान कार्य, ऐसा है कभी? और केवलज्ञान का कार्य यह लोकालोक को निमित्त है तो केवलज्ञान कर्ता और लोकालोक कार्य—ऐसा है? (नहीं)। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात।

ये यहाँ कहते हैं। जीव अपने परिणाम से उत्पन्न होता है—कार्य तो करता है, ऐसे कहते हैं। कार्य किये बिना रहता है, ऐसा तो नहीं। कार्य करता है तो पर का भी कार्य करे तो उसमें क्या है? लोक में कहते हैं कि गोपाल एक गाय को चराता है तो हमारी गाय को भी ले जा। दो गाय चरावे, चार गाय चरावे... एक गाय को चरावे तो पाँच गाय को चरावे। अपना कार्य करता है तो पर का भी कार्य करे। कार्य करे बिना रहता है, तब तो पर का कार्य न करे, ऐसा कहते हैं। देखो! शब्द कैसा लिया है?

जीव अपने परिणामों से... परिणाम अर्थात् कार्य। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि परिणाम-कार्य। आत्मा का कर्ता नाम के गुण से कार्य होता है अथवा कर्मगुण से ये कर्म हुआ है। अपने में कर्मगुण है... कर्मगुण है, उस कारण से कर्म अर्थात् धर्म की वीतरागी पर्याय (हुई है)—कर्मगुण से कर्म हुआ है। आहाहा! ये अपने परिणाम से उत्पन्न होता है, तथापि—ऐसा होने पर भी... एक अपना कार्य करे बिना रहे और आप ऐसे कहो कि

पर का कार्य न करे (तब तो ठीक है)। परन्तु कार्य तो करता है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा... अन्तर वस्तु आत्मा ही सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ही है। आहा! अपने परिणाम से उत्पन्न होता है, अपना कार्य करता तो है। कार्य किये बिना रहता नहीं, तो भी—तथापि पर का कार्य नहीं करता। ऐसा लिया न? 'तथापि' लिया न? ऐसा होने पर भी... तथापि नाम ऐसा होने पर भी... अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कार्य आत्मा अपने परिणाम से करता है। उसमें गुण हैं। उसके गुण तो ध्रुव हैं, गुण का परिणमन नहीं होता। गुण तो अपरिणमनस्वभावी, अपरिणामी पारिणामिकभाव से त्रिकाल है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम, वह परिणमन है। तो उस परिणमन का कर्ता आत्मा अपने परिणाम का कर्ता है। वह परिणाम कर्ता का कार्य है। राग नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, स्त्री नहीं, कुटुम्ब नहीं, धन्धा नहीं। आहाहा! पैसेवाले को यह सब कठिन पड़े। पैसे ऐसे इतने दिये, संग्रह किया, इतना इकट्ठा किया। दुकान के गल्ले पर बैठकर, ग्राहक का ध्यान रखनकर...

मुमुक्षु : अहंकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अहंकार है... अहंकार है। परद्रव्य और तेरे द्रव्य में अत्यन्त अभाव है। तो अभाव (होने पर भी) पर का कार्य करे, (ऐसे) कैसे बने प्रभु? आहाहा! तेरे अहंकार का नाम मिथ्यात्व है। आहाहा!

अपने कार्य से उत्पन्न होता है, तथापि उसका अजीव के साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता... ऐसा सिद्ध किया कि जब क्रमबद्ध का निर्णय करते (हुए) अपने ज्ञायकभाव का निर्णय हुआ, तो अपने में सम्यग्दर्शन-ज्ञान पर्याय उत्पन्न हुई। यह पर्याय है, उसका कर्ता तो आत्मा है। उसमें व्यवहाररत्नत्रय राग कर्ता और निर्मल पर्याय कार्य—ऐसा है? कि ऐसा है नहीं। एक बात। निर्मल पर्याय कर्ता और राग कार्य—ऐसा है? कि ऐसा है नहीं। राग का कार्य भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? अपनी चीज को जानकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, उससे उत्पन्न होता हुआ वो परिणाम (रूपी) कार्य करता है। यह कैसे? कि यह परिणाम का कार्य पूर्व पर्याय थी तो उत्पन्न हुआ?

जैसे केवलज्ञान हुआ, तो मोक्षमार्ग था तो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ? कि नहीं। इस मोक्षमार्ग का तो व्यय होता है। ये (जीव) तो सीधा अपने केवलज्ञान पर्याय से उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब। जहाँ मोक्षमार्ग से भी मोक्ष नहीं, तो राग से, निमित्त से और पर से तो कहाँ रहा? आहाहा!

अजीव के साथ... यहाँ 'अजीव के साथ' (शब्द) लिया है, परन्तु उसका अर्थ यहाँ ऐसा भी लेना कि इस जीव के अतिरिक्त दूसरे जीव हैं, वे इसकी अपेक्षा से अजीव हैं। उनका कार्य भी आत्मा कर सकता नहीं। आहाहा! अजीव का कर्म-कार्य तो नहीं... इस जीव के अतिरिक्त दूसरे जीव हैं, वह अजीव हैं। अपनी अपेक्षा से अजीव हैं, उनकी (स्वयं की) अपेक्षा से जीव हैं। आहाहा! यहाँ तो अजीव का निषेध किया, तो फिर (अन्य) जीव की पर्याय का कर्ता (बनकर) कर सकता, ऐसा है, आता है या नहीं? परजीव का कार्य कर सकता है, ऐसा आता है या नहीं? ये आत्मा के अतिरिक्त परवस्तु सब (अजीव हैं अर्थात्) ये जीव नहीं। यह जीव अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम से उत्पन्न होता है। आहाहा! परजीव में सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है तो उसमें (इस) आत्मा की पर्याय कर्ता और सम्यग्दर्शन उसका कार्य—ऐसा है नहीं। आहाहा!

तथापि... आहाहा! उसका अजीव के साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता... क्यों? कारण देते हैं। **क्योंकि सर्व द्रव्यों का अन्य द्रव्य के साथ उत्पाद्य-उत्पादकभाव का अभाव है...** क्या कहते हैं? सर्व द्रव्यों के साथ... उत्पाद्य अर्थात् उत्पन्न होनेयोग्य कर्म (-कार्य) और पर आत्मा उत्पादक—उत्पाद्य और उत्पादक, ऐसा है नहीं। आहाहा! हाथ की ऐसे ऊपर होने की योग्यता उत्पाद्य और आत्मा का विकल्प उत्पादक अथवा ज्ञान में आया कि मुझे हाथ को ऊपर करना है, ऐसा ज्ञान उत्पादक और हाथ ऊपर हुआ, यह उत्पाद्य—उसका अभाव है। आहाहा! भभूतमलजी! यह भभूति दूसरी है। यह सब तो धूल की भभूति है। आहाहा! भगवान! तेरा मार्ग, प्रभु! कोई अलौकिक है। आहाहा!

अकेला सुनकर—सुना और उससे ज्ञान की पर्याय हुई, कहते हैं कि सुनना... सुनने की पर्याय कर्ता और ज्ञानपर्याय कार्य—ऐसा है नहीं। वह ज्ञानपर्याय भी परलक्ष्यी है, ये सम्यग्ज्ञान नहीं। क्या कहा? सुनने से अन्दर जो ज्ञान होता है, उसकी पर्याय तो

उसके कारण से होती है, सुनने से नहीं। परन्तु यह ज्ञान जो उत्पन्न हुआ, सूत्र का निमित्त है, सुनने में, तो ये ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान नहीं। क्योंकि परलक्ष्य से हुआ है। सम्यग्ज्ञान का कार्य तो अपने द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान कर्ता और आत्मा का सम्यग्दर्शन कार्य—ऐसा है नहीं। आहाहा! कहाँ ले जाना है ?

प्रभु! तेरी स्वतन्त्रता... तेरे में प्रभुता नाम का गुण है। ४७ शक्ति है न? उसमें प्रभुत्व नाम का एक गुण है—ईश्वर होने का गुण है। ईश्वर होने का एक गुण है, सर्व गुण में ईश्वरगुण का रूप है। आहाहा! अनन्त... अनन्त... गुण ईश्वररूप हैं। ईश्वर कोई पर की आशा नहीं करते। आहाहा! अखण्ड प्रभुता से शोभायमान, स्वतन्त्रता से, अपने प्रताप से प्रत्येक गुण की पर्याय अपनी अखण्ड स्वतन्त्रता से पर्याय से उत्पन्न होती है। आहाहा! कोई निमित्त कारण से तो नहीं, परन्तु पूर्व की पर्याय से यह उत्पन्न हुई, ऐसा भी जिसमें नहीं। आहाहा!

यहाँ तो सीधे ज्ञायकभाव से आत्मा परिणाम में उत्पन्न होता हुआ कार्य करता है तो दूसरे के कार्य में उसकी मदद हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह लकड़ी ऊँची होती है, उसमें कर्ता (गुण) है—उसमें भी कर्ता नाम की शक्ति है, उसके कारण से कार्य होता है। अँगुली से नहीं। दुनिया संयोग से देखती है, परन्तु उसके स्वभाव से (कार्य हुआ) है, ऐसा नहीं देखती। आँख से देखते हैं कि अँगुली है या नहीं? परन्तु अँगुली तो संयोग है, पर है। समझ में आया?

इसी तरह सुनने से ज्ञान हुआ... वह भी पर है। सुनना परचीज है, उससे ज्ञान तेरे में हो? यह तो अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है कि यह टीका मैंने की है, ऐसे मोह से न नाचो। प्रभु! मैं तो ज्ञानस्वरूप से मग्न हूँ। मैं विकल्प में भी आया नहीं, तो टीका की क्रिया में कहाँ से आऊँगा? आहाहा! समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, इष्टोपदेश में प्रत्येक में बाद में है। आहाहा! ऐसी टीका! कहते हैं कि ये तो शब्द की पर्याय से कार्य हुआ है। शब्द परमाणु में कर्ता-कर्म शक्ति है, उससे पर्याय का कार्य हुआ है, मेरे से नहीं। मैं टीका का करनेवाला हूँ, ऐसे मोह से न नाचो और मेरी टीका सुनने से तुमको ज्ञान होता है, ऐसे न नाचो। आहाहा! उसमें है। मेरी टीका सुनने से तुझे ज्ञान होता है

ऐसे न नाचो। आहाहा! है या नहीं अन्दर? अन्त के श्लोक में। प्रवचनसार में विशेष है... प्रवचनसार में विशेष है। आहाहा! है प्रवचनसार? (श्लोक २१)।

‘वास्तव में पुद्गल ही स्वयं शब्दरूप परिणमित होते हैं, आत्मा उन्हें परिणमित नहीं कर सकता।’ आत्मा, शब्द को परिणमा सकता नहीं। ‘उन्हें ही वास्तव में सर्व पदार्थ ही स्वयं ज्ञेयरूप-प्रमेयरूप परिणमित होते हैं, शब्द उन्हें ज्ञेय बना—समझा नहीं सकते।’ यह शब्द आया तो तुझे ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसे न नाचो। प्रभु! आहाहा! ऐ मणिभाई! शब्द जो परिणमते हैं, यह पुद्गल की पर्याय से परिणमते हैं, आत्मा से नहीं। एक बात। उसको परिणमा सकता नहीं—परिणमा सकता नहीं। तथा सर्व पदार्थ स्वयं ज्ञेयपने परिणमते हैं। वह अपनी पर्याय में जानना होता है, वह अपने से होता है। सुनने से होता है, कान में शब्द पड़ा तो ज्ञान हुआ—ऐसे न नाचो, प्रभु! ऐसी पराधीनता नहीं है। आहाहा! कपूरचन्दजी! ऐसी बात है। आहाहा! शब्द, शास्त्र...

कहते हैं, यह तो विकल्प है। और शास्त्र से ज्ञान होता है, ऐसे न नाचो। ज्ञान की खान तो तुम हो। तुम्हारे से ज्ञान कर्ता होकर ज्ञान की पर्याय कर्म अर्थात् कार्य होता है। तो सुनने से होता है, ऐसा न मानो। आहाहा! यह तो आवे, परन्तु ऐसी कठिन बात है। भाषा तो ऐसी ही आवे कि आगम का अभ्यास करो, देव-गुरु की श्रद्धा करो, सुनो, गुरु की सेवा करने से—गुरु की चरणसेवना करने से समकित होता है—ऐसा भी आता है। यह निमित्त का कथन है। समझ में आया? आहाहा! ‘शब्द उन्हें ज्ञेय बना—समझा नहीं सकते, आत्मा सहित विश्व वह व्याख्येय...’ आत्मा सहित सम्पूर्ण विश्व व्याख्येय—व्याख्या करनेयोग्य—समझानेयोग्य ‘(और) वाणी की गुंथन वह व्याख्या—समजूती और अमृतचन्द्रसूरि वे व्याख्याता—व्याख्या करनेवाले—समझानेवाले—इस प्रकार जन मोह से मत नाचो...’ आहाहा! अर्थ में से ऐसे ले कि यह तो निर्मानी हैं तो निर्मानता से बात करते हैं। निर्मानी हैं, परन्तु निमित्त कर्ता है ही नहीं। आहाहा!

बाद में है। २१ (श्लोक) में। प्रवचनसार में श्लोक बहुत थोड़े हैं—कलश थोड़े हैं। समयसार में २७८ हैं, नियमसार में बहुत हैं कलश। इसमें थोड़े हैं। २२ कलश हैं, पूरे प्रवचनसार में कलश २२ हैं। समयसार में २७८ कलश हैं, नियमसार में बहुत हैं।

यहाँ कहते हैं कि अमृतचन्द्रसूरि व्याख्याता—समझानेवाले हैं, ऐसे मोह से जन ना नाचो। आहाहा! समझानेवाले को ऐसा हो जाये कि मैं समझाता हूँ तो उसे समझ में आता है।

मुमुक्षु : आप समझाते हैं महाराज! तो हम समझते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है नहीं, ऐसा कहते हैं। मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! आहाहा! यह विकल्प का कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप यह क्या विकल्प-राग, विकार, दुःख, आकुलता (को उत्पन्न करे)? आनन्द का नाथ आकुलता को उत्पन्न करे? आहाहा! विकल्प जो समझाने का है, यह भी आकुलता, दुःख है। आहाहा! समाधिशतक में वहाँ तक लिया है, आहाहा! मैं पर को समझाता हूँ, यह भी उन्मत्तता है, गहलता है। समाधिशतक। पागलपना है। आहाहा! क्योंकि उसको तेरे से समझ में नहीं आता, उसको उससे (-स्वयं से) समझ में आता है। बात बहुत कठिन। पूरी दुनिया से अन्तर है। अभी के तो पण्डित तो हम ऐसा करे...

एक बार ऐसा सुना था। ५० पण्डित यहाँ के विरोध में इकट्ठे हुए थे इन्दौर में। ५० पण्डितों ने ऐसा निर्णय किया कि परद्रव्य का करे नहीं, ये दिगम्बर (जैन) नहीं। यहाँ से ना करते हैं न कि परद्रव्य (का कर सके नहीं)। करो प्रभु! तुम तो प्रभु हो अन्दर में। भूल होती है पर्याय में। 'जामे जितनी बुद्धि है उतनो दियो बताया, वांको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये।' आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि न फूलो। आहाहा! ओहो! टीका सुनी उससे मेरे को ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं होता। ऐसे फूलो नहीं। आहाहा! 'स्याद्वादविद्या के बल से विशुद्ध ज्ञान की कला द्वारा...' स्याद्वादविद्या के बल से विशुद्ध ज्ञान की कला... 'यह एक पूरे शाश्वत् स्वतत्त्व को प्राप्त करो...' आज से ही प्राप्त करो। आहाहा! ऐसा पाठ है। दिगम्बर सन्त की वाणी कोई अलौकिक है। आज ही प्राप्त करो। पीछे करूँगा, (ऐसी भावना है) तो तुझे रुचि नहीं। जिसकी रुचि है, उसका वीर्य उस ओर गति किये बिना रहेगा नहीं। आहाहा! 'रुचि अनुयायी वीर्य।' धन्नलालजी! आहाहा! जिसको रुचि है, यह वायदा करे, ऐसा होता नहीं। आहाहा! 'वायदा' कहते हैं? हिन्दी में क्या कहते हैं? (वादा... वादा।) वायदा करे कि पीछे... पीछे... (-बाद में)। पीछे में पीछे रहेगा... पीछे में पीछे रहेगा। आहाहा!

‘एक पूरा शाश्वत् स्वतत्त्व को प्राप्त कर...’ आहाहा! प्रभु! ‘एक पूरा शाश्वत् स्वतत्त्व...’ भाषा देखो! एक पूर्ण परिपूर्ण शाश्वत् टंकोत्कीर्ण शाश्वत् स्वतत्त्व... यह स्वतत्त्व यहाँ आया। आहाहा! ‘उसे प्राप्त करके आज (जानो) अव्याकुलपने नाचो।’ आहाहा! एक अखण्ड शाश्वत् चैतन्य प्रभु... आहाहा! उस तरफ का लक्ष्य करके प्राप्त करो। यह करनेयोग्य है। आहाहा! ‘आज से (जनों) अव्याकुलपने...’ प्रभु! तू तेरी चीज़ में आज ही जो अन्दर में एकाग्र होगा तो आज ही अर्थात् उस काल में ही तुझे आनन्द आयेगा। यही कहते हैं, देखो! अव्याकुलपने परिणमो। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दपने परिणमो प्रभु! आहाहा! यही तेरा कार्य है। ये आत्मा अपने परिणाम से उत्पन्न होता है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात है भाई! यह तो, ‘मैं करूँ... मैं करूँ... यही अज्ञान है, शकट का भार ज्यों श्वान उठाये।’ बैल गाड़ी को चलाता हो, उसके नीचे... में कुत्ता का सिर छुए तो (उसे लगता है कि) मेरे से गाड़ी चलती है। ऐसे दुकान में बैठे तो मेरे से धन्धा चलता है, (ऐसे मानता है तो) कुत्ते जैसा है। सेठ! यहाँ तो यह बात है। सेठ! सम्प्रदाय की दृष्टि छोड़कर यहाँ आये हैं न कि क्या कहते हैं, यह सुनने को? मार्ग तो, प्रभु! कोई अलौकिक है।

यह यहाँ कहा कि **कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता...** यह शब्द कारण और ज्ञान की पर्याय कार्य—ऐसा सिद्ध नहीं होता। आहाहा! समयसार में आता है न? कि मैं पर को बन्ध करा दूँ, मैं पर को वीतराग करा दूँ... बन्ध अधिकार में है। पर को मैं मोक्ष करा दूँ। मूढ है। उसकी वीतरागता से मोक्ष होगा और उसके राग से, अज्ञान से संसार में रहेगा। तुम उसको वीतरागता दे सकते हो? आहाहा! बन्ध अधिकार में है। मैं पर को बन्ध और मोक्ष करा दूँ... आहाहा! प्रभु! तू क्या करता है? प्रभु! तू तो ज्ञानस्वरूप है न? ज्ञानस्वरूप में विकल्प उठते हैं ये, प्रभु! दुःखरूप है न? तो तुझे दूसरे का क्या करना है? आहाहा! ऐसा अभिमान कहाँ तक तुझे रखना है? आहाहा! जब तक मैं पर का कर सकता हूँ, (ऐसा) अभिमान है, मिथ्यात्व है, तब तक तू स्वसन्मुख नहीं हो सकता। आहाहा! भाषा समझ में आती है, सेठ? आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

उत्पाद्य-उत्पादकभाव का अभाव है। क्या कहा? सर्व द्रव्यों का... सर्व द्रव्यों

का अन्य द्रव्य के साथ... अरिहन्त का द्रव्य उत्पादक और सुननेवाले का ज्ञान उत्पाद्य (अर्थात्) उत्पन्न हुआ—ऐसा अभाव है। है या नहीं अन्दर? उत्पाद्य और उत्पादक। उत्पाद्य—उत्पन्न होनेवाला कार्य और उत्पादक दूसरी चीज़—ऐसा उत्पाद्य—उत्पादक का अभाव है। जड़ की पर्याय उत्पाद्य—होनेयोग्य और आत्मा उत्पादक—ऐसा अभाव है। आहाहा! वाणी की पर्याय उत्पाद्य और आत्मा उसका उत्पादक—(ऐसा) अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्मशास्त्र में तो दूसरा ही लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिखा है ? यह तो पहले बताया प्रवचनसार में। टीका हमने की ही नहीं। हम कहाँ हमारी पर्याय को छोड़कर पर में जायें और करें ? आहाहा! कठिन बात, बापू! जगत से मिलान खाना मुश्किल। आहाहा! जन्म-मरण से रहित होने की पद्धति कोई अलौकिक है।

बाहर से प्रसन्न हो जाये, खुशी हो जाये और दूसरे को... अष्टपाहुड़ में कहा है और तारणस्वामी में कहा है कि जनरंजन, ऐसी अनुकूल बात करे कि जनरंजन हो जाये। अष्टपाहुड़ में कहा है कुन्दकुन्दाचार्य को। आहाहा! प्रभु! जनरंजन की अनकुल बात तुम करोगे, तो तुझे भ्रमणा है। पूरी दुनिया खुश हो जाये। भैया! एक-दूसरे की मदद करो। वहाँ गरीब ओशियाणो मनुष्य हो तो कहे, महाराज ने बहुत अच्छा कहा, हमें मदद की। हम गरीब मनुष्य हैं तो हमको मदद करने को सेठ को कहा। प्रसन्न हो जाये। शुकनचन्दजी! आहाहा! ऐई!

बहुत लोगों के पत्र आवें हमारे पास एकान्त कि हम निवृत्त हो गये हैं तो यहाँ हमको रखो। यहाँ रखे कौन? ऐसी ... प्रवृत्ति में पड़े कौन? साधु का भी लेख आता है कि हमें वहाँ आना है। भव्यसागर दिगम्बर साधु है न?

मुमुक्षु : आप व्यवस्था करते नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ करते नहीं। आहाहा! भव्यसागर के पत्र बहुत आये। दिगम्बर साधु जालना में थे। स्थानकवासी का आचार्य था आनन्दसागर, उसको (बहुत लोग) वन्दन करने आते थे। आनन्दसागर स्थानकवासी साधु था। आहाहा! आनन्दसागर,

नहीं ? स्थानकवासी । क्या कहे ? आनन्दऋषि । यह भव्यसागर के पास आता था । नग्न मुनि है तो वहाँ आता था । तो कहते थे कि हमारे पास आता है...

यहाँ तो पत्र ऐसे लिखा है हमको कि तुम्हारी बात निकली तो कहते हैं कि भैया ! हम साधु नहीं, हम मुनि नहीं । हमने तो समकित बिना का वेश ले लिया है । अब हमारा वहाँ आने का भाव है । तुम इतना लिखो कि आओ । हम तो इतना भी लिखते नहीं कि आओ या जाओ । बहुत पत्र आये थे । स्वामी ! इतना लिखो कि आओ । तुम आओ तो कहाँ ठहराना ? इसमें मैं क्या प्रवृत्ति करूँ ? उसको आहार-पानी का तो हो जायेगा । भले न दे, हो जायेगा । परन्तु यहाँ करे कौन ? परन्तु यहाँ करे कौन ? यहाँ आवे तो कहाँ रखे ? फिर तुमको कौन रखे और कहाँ रखे ? यहाँ कौन करे ? बापू ! यहाँ कोई करे नहीं ।

एक स्थानकवासी साधु आया था जवान । उसकी बहिन ने दीक्षा ली, उसमें कोई भूल हो गयी थी । यह उकताहट आ गया था । आया, कहे, मुझे यहाँ रखो । हम तो किसी को रखते नहीं । तुम्हें कहाँ रखना ? मकान कहाँ... चला गया । सुबह में आया था, दोपहर में गया । जवान था, मारवाड़ी । पत्र तो बहुत आते हैं एकान्त, परन्तु यहाँ कौन करे ? बापू ! ये तो उपदेश का विकल्प आता है और वाणी निकलती है, आती है । यहाँ रखकर उपाधि कौन (बहोरे) ? यहाँ देखो ! क्या कहा ?

सर्व द्रव्यों का अन्यद्रव्य के साथ... सर्व द्रव्य लिये न ? जीव, अजीव,— परमाणु, धर्मास्ति आदि कोई भी तत्त्व । उत्पाद्य—उत्पन्न होनेयोग्य और उत्पादक—उत्पाद करनेवाला—ऐसा (सम्बन्ध) है नहीं । सर्व द्रव्यों में उत्पाद्य वह और उत्पादक दूसरा— ऐसा है नहीं । उत्पाद्य वह और उत्पादक भी वह । वास्तव में उसकी पर्याय उत्पन्न होती है, उसका कारण भी वह और कार्य भी वह—पर्याय कारण और पर्याय ही कार्य—ऐसा है प्रभु ! आहाहा ! इसमें निमित्त उत्पादक और नैमित्तिक उत्पाद्य—उसका अभाव है । है ? उत्पाद्य... उत्पाद्य अर्थात् उत्पन्न होनेयोग्य कार्य और उत्पादक—उसको उत्पन्न करनेवाला । **सर्व द्रव्यों का अन्यद्रव्य के साथ...** आहाहा ! क्या बाकी रहा इसमें ?

देव-गुरु उत्पादक और (शिष्य की) सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पाद्य—(ऐसा) है

नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! इस शिक्षण शिविर में आया तो शिक्षण यही बात करे न। पण्डितजी! आहाहा! अभाव है... उसके कारण-कार्यभाव सिद्ध न होने पर... परद्रव्य उत्पाद्य और दूसरा परद्रव्य उत्पादक, ऐसा सिद्ध न होने पर जीव के अजीव का कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। अजीव (की पर्याय) जीव का कार्य... अजीव की पर्याय जीव का कार्य, ऐसा सिद्ध होता नहीं। समझ में आया? क्या आया? अजीव के जीव का कर्मत्व... अजीव को जीव का कर्मत्व—कार्य ऐसा सिद्ध नहीं होता। अजीव के जीव का कर्मत्व... अजीव को जीव का कार्य(पना)... अजीव को जीव का कार्य(पना)... है या नहीं अन्दर? अजीव को कर्मत्व... पश्चात् ऐसा लेना। तीसरा शब्द है, अजीव को जीव का कर्मत्व सिद्ध नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जो कुम्हार हो, तो घड़ा बनने (के काल में) 'घड़ा मैं बनाता हूँ' ऐसा विकल्प उठता ही नहीं। कुम्हार सम्यग्दृष्टि होता है या नहीं? स्त्री सम्यग्दृष्टि हो वह, रोटी बनाती हूँ, सब्जी बनाती हूँ—ऐसा मानती नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव कार्य में (निमित्त की) उपस्थिति देखे तो भी उससे बनता है, ऐसा वे मानते नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम! रोटी, दाल, भात, सब्जी करना, पूड़ी करना, वड़ी, पापड़, सेव... होशियार महिला हो, हाथ हलवो हो तो बराबर हो। भ्रमणा है तेरी। आहाहा! जीव के अजीव का कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। अजीव को जीव का कार्य, ऐसा सिद्ध नहीं होता। है? आहाहा! और उसके (-अजीव के जीव का कर्मत्व) सिद्ध न होने पर, कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षता... आहाहा! सिद्धि होने से... जरा उसकी विशेष व्याख्या है। निरपेक्ष आया न? जरा विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनांक-२७-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-७

यह समयसार है। यह सर्वविशुद्ध अधिकार बहुत अपूर्व है। प्रत्येक पदार्थ में पर्याय क्रमबद्ध होती है, उस पर्याय को पर की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? जैसे घड़ा-घट उत्पन्न होता है, उसको कुम्हार की अपेक्षा नहीं। है? कर्ता-कर्म का महा सिद्धान्त है यह। **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्ष...** आहाहा! कर्ता का कार्य उसमें अन्य की अपेक्षा ही नहीं। घड़ा होता है तो कुम्हार की अपेक्षा नहीं। बुनकर वस्त्र करता है तो वस्त्र में बुनकर की अपेक्षा नहीं। आहाहा! भाषा होती है, उसमें आत्मा की अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह अक्षर लिखने में आता है, (उसमें) लिखनेवाले की अपेक्षा नहीं। सारी दुनिया की बात क्रमबद्ध में आ गयी है। कर्ता-कर्म महासिद्धान्त है। **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्ष...** अन्य पदार्थ की अपेक्षा नहीं जहाँ। आहाहा! जैसे आत्मा में राग हो तो उसमें कर्म की अपेक्षा ही नहीं और कर्मबन्धन जो होता है, उसके राग की अपेक्षा नहीं। राग उसने किया, इसलिए कर्मबन्धन होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

यह शरीर चलता है, उसमें आत्मा की अपेक्षा नहीं। आहाहा! आत्मा ने इच्छा की इतनी अपेक्षा से शरीर चलता है, ऐसा है नहीं। रोटी बनती है तो रोटी में स्त्री की या तवे की, अग्नि की अपेक्षा है—ऐसा है नहीं, ऐसे कहते हैं। समझ में आया? यह टोपी जो ऊपर रहती है, उसको शरीर की अपेक्षा नहीं। **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्ष...** है न? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह बात भी यथार्थपने न बैठे, उसे अन्तर्मुख होने की योग्यता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं, यह हीरे की बात याद आ गयी, शान्तिभाई की। हीरा घिसते हैं न? उनकी दुकान में बहुत २०-२५ लोग घिसते हैं हीरा। झलकते हैं। तो हीरा घिसते हैं और जो उज्ज्वलता (उत्पन्न होती) है, उसको यह घिसनेवाले की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सब्जी पकती है, उसमें अग्नि की, स्त्री की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह होठ हिलते हैं तो परमाणु कर्ता और होठ उसका कर्म है, उसमें आत्मा की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह चीज़... इस क्रमबद्ध में

यह डाला है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में जिस समय में जो पर्याय होनेवाली होती है तो उसको पर की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

जगत में किसी भी चीज़ की पर्याय—कार्य, ये पदार्थ का कर्म कहो या कार्य कहो या पर्याय कहो कि उसका—परमाणु का, जीव का कार्य कहो, उस अपनी पर्याय के कार्य में पर की कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! यह बात बैठना (कठिन) पूरी दुनिया को, हों! ये ऊपर रहा है न? क्या कहते हैं? पासडा(-पांसणी)। पासडा को नीचे के आधार की अपेक्षा नहीं। भबूतमलजी, आहाहा! पासडा जो रहा है... पासडा कहते हैं तुम्हारे में? वौ नीचे की अपेक्षा से रहा है (ऐसा है नहीं)। आहाहा! गजब बात है। भबूतमलजी! गजब बात है! आहाहा! कहते हैं, एक परमाणु गति करता है, पवन आया तो परमाणु—तिनका चलता है, (ऐसा है नहीं)। आँधी होती है न आँधी? उसमें तिनका उड़ता है, वह तिनका उड़ता है तो उसको पवन की अपेक्षा नहीं। आहाहा!

यह पुस्तक बनती है उसको बनानेवाले की अपेक्षा है ही नहीं और पुस्तक बनती है। पण्डितजी बहुत बनाते हैं। आहाहा! यह सिद्धान्त तो सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ का सिद्धान्त क्रमबद्ध कहकर... आहाहा! जब जिस द्रव्य की जो पर्याय जिस समय में उत्पन्न होती है, तो उसको पर की अपेक्षा कहाँ रही? हो, निमित्त हो। घड़ा बनने में घड़े को कुम्हार की अपेक्षा नहीं है। कुम्हार हो, परन्तु हो तो उसकी अपेक्षा से घड़ा बना है, ऐसा है नहीं। और बुनकर है बुनकर—वस्त्र-कपड़ा बुननेवाला, उससे कपड़ा बुना (गया) है, ऐसा है ही नहीं। कपड़े की पर्याय के कर्ता-कर्म की अपेक्षा में बुनकर की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! यह बात...

घर में तिजोरी में पैसा रखते हैं कि कोई न ले जाये तो कहते हैं कि उसमें पैसा रखने की अपेक्षा में किसी की अपेक्षा है नहीं। वहाँ रहने की उसकी योग्यता का कर्ता-कर्म उसमें है। आहाहा! तिजोरी से रहा नहीं। तिजोरी में रखे, उसकी अपेक्षा से वहाँ रहा नहीं। आहाहा! ताला लगाया, कहते हैं, ताला बन्द हुआ, उसको चाबी की अपेक्षा नहीं। पण्डितजी! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! प्रभु की बात अपूर्व है, नाथ। यह बात कहनेमात्र नहीं, परन्तु अन्तर में यह बात बैठना (कठिन है)। आहाहा! यहाँ तो ऐसे

कहते हैं, भगवान की वाणी कान में पड़ी तो वहाँ ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसी वाणी की अपेक्षा उसको है नहीं। यह पृष्ठ जो है, उसके वाँचने से ज्ञान होता है, यह पृष्ठ, तो कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय में पत्रे की अपेक्षा है ही नहीं। ज्ञान की पर्याय कार्य है और कर्ता आत्मा है, यह व्यवहार है। निश्चय से पर्याय कर्ता और पर्याय कार्य है। आहाहा! उसमें—पत्रे में देखने से ज्ञान होता है, यह बात सत्य नहीं है। आहाहा! और पर के समझाने का ज्ञान होता है, उसमें समझानेवाला और वाणी की उसमें अपेक्षा नहीं। आहाहा! कितने में से हठ जाना! आहाहा!

रोटी का टुकड़ा होता है, उसको दाँत की अपेक्षा नहीं। टुकड़ा होता है न दाँत से? यह टुकड़ा होता है, यह कार्य है—रोटी का—परमाणु का क्रम है, उसमें दाँत की अपेक्षा नहीं। आहाहा! और जानने में आता है तो चश्मा निमित्त है और नीचे उतरा तो नहीं जानने में चश्मे की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सर्वथा विपरीत है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा विपरीत जगत से है, भैया! आहाहा! यहाँ का—दिगम्बर का विरोध आता है, करुणादीप में यहाँ का। एक मन्दिरवासी साधु चन्द्रशेखर मिला था। चन्द्रशेखर है, वह हमारे पास लींबड़ी आया था। कहा, चर्चा करना है। (मैंने कहा), हम किसी से चर्चा करते नहीं। परन्तु ये बात ऐसी कोई है! कहते हैं, वाद-विवाद, ऐसा कोई हो... नियमसार में तो कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु कहते हैं, प्रभु! स्वसमय और परसमय साथ में वाद-विवाद नहीं करता। ऐसी चीज अगम्य है कि गम्य करने में कोई वाद-विवाद से गम्य हो जाये, (ऐसा है नहीं)। नियमसार में आता है। वादविवाद... स्वसमय-अपना जैन और परसमय अन्य—उसके साथ वाद नहीं करना।

तो कहा कि हम वाद बिल्कुल करते नहीं। पीछे उठते समय बोले कि इस चश्मे बिना जानने में आता है? कहा, हो गया भाई! वाद। यह सब बात अब करुणादीप में डालते हैं, यह दिगम्बर की बात। लो, चन्द्रशेखर की बात तोड़ देते थे, ऐसा-वैसा... चश्मे से देखने में आता है या नहीं? कहा, हो गयी चर्चा भैया! चश्मा दूसरी चीज़ है और जानने की पर्याय दूसरी चीज़ है। जानने की पर्याय में... क्या कहलाये? चश्मे की

अपेक्षा ही नहीं। तो चढ़ाते क्यों हो? कौन चढ़ाता है? प्रभु! वह चढ़ता है तो अपने कर्ता-कर्म से चढ़ता है, अँगुली से नहीं चढ़ता। आहाहा! अरेरे! नाक के आधार से चश्मा रहा है, ऐसी पर की अपेक्षा नहीं। यह शब्द है? है या नहीं अन्दर? देखो!

कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया (-अन्यद्रव्य से निरपेक्षतया, स्वद्रव्य में ही) सिद्धि होने से... आहाहा! महासिद्धान्त है। हमारे पवैयाजी कहते थे कि क्रमबद्ध की बहुत अच्छी बात आयी। आज सवेरे में पवैयाजी आये थे न? क्रमबद्ध का निचोड़ यह है। समझ में आया? कि प्रत्येक पदार्थ की जो पर्याय जिस समय में—जिस काल में—जन्मक्षण में उत्पन्न होने की है, वह उत्पन्न होगी, उसको पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? एक हाथ दूसरे हाथ को छूता नहीं। अपना जो कार्य है यहाँ ऐसा, उस कार्य में अँगुली की अपेक्षा नहीं और अँगुली के कार्य में इस अँगुली की अपेक्षा नहीं। अरर! ऐसी बात! समझनेवाले को जोर आ जाये कि भाषा से लोगों को समझा दूँ... आहाहा! तो कहते हैं कि समझने की पर्याय उसकी है, उसमें तेरी भाषा की अपेक्षा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परस्पर उपकार...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात निमित्त का कथन है।

‘परस्पर उपग्रहो...’ आता है न अभी तो सबमें? चौदह ब्रह्माण्ड का (फोटो बना है), नीचे लिखे ‘परस्पर उपग्रहो...’ सबमें आता है बहुत। ओहोहो! ‘परस्पर उपग्रहो...’ यह तो ठीक, मोक्षमार्गप्रकाशक के आठवें अध्याय में है। तीर्थकरों, गणधरों ने भी परोपकार किया है उपदेश देकर, (वही) मैं भी कहता हूँ। यह तो निमित्त का कथन है। मोक्षमार्गप्रकाशक आठवें अध्याय में है। समझ में आया? है यहाँ? यहाँ होगा। यहाँ है। ‘मिथ्यादृष्टि जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर उसका उपकार करना, वही उत्तम उपकार है।’ देखो! मोक्षमार्गप्रकाशक। यह सब निमित्त से कथन है। समझ में आया? ‘श्री तीर्थकर-गणधरादि भी ऐसा उपाय करते हैं। इसलिए शास्त्र में भी उनके उपदेशानुसार उपदेश देते हैं।’ यह व्यवहार का कथन है। मोक्षमार्गप्रकाशक में है।

अरे प्रभु! यहाँ तो कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य की... सुननेवाले को जो (ज्ञान)पर्याय

उत्पन्न होती है, यह पर्याय सुनने की अपेक्षा बिना उत्पन्न होती है। आहाहा! बन्ध अधिकार में लिया है न? कि पर का मोक्ष (करता हूँ) और पर को बन्ध कराता हूँ, ऐसा तुम मानते हो, (लेकिन) उसको अज्ञान से बन्ध होता है और वीतरागभाव से उसका मोक्ष होता है, तो तुम क्या उसको (बन्ध)-मोक्ष करा देते हो? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! बहुत अपूर्व बात! आहाहा! माला फिरती हैं माला, उसमें मणका (-मोती) जो नीचे उतरता है, उसे अँगुली की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? आहाहा! अँगुली से फिरता है, ऐसी पर की—आत्मा की अपेक्षा नहीं है। उसमें आत्मा की अपेक्षा नहीं। यह पर्याय उसके समय में कालक्रमसर—क्रमबद्ध होनेवाला कार्य का कर्ता तो वही परमाणु है। जिसका कार्य देखो, उस कार्य का कर्ता यह है। उस कार्य में दूसरे की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! रोटी बनती है, रोटी बनती है... ऐसे-ऐसे बनता है न? महिला (घुमाती है) गोल चक्कर करने को, तो कहते हैं कि उसमें हाथ की अपेक्षा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : संयोग से देखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग से देखनेवाला संयोग से देखता है। उसके स्वभाव से देखे तो उसकी पर्याय उससे हुई है। आहाहा! जगत की दृष्टि संयोग पर है।

जैसे एक लौकी है लौकी, उस पर छुरी पड़ी तो टुकड़ा हुआ, यह भी झूठ है। टुकड़ा होने में छुरी की अपेक्षा है ही नहीं। ऐसी बात... क्या कहते हैं? समझ में आया? आहाहा! कर्ता-कर्म की... करनेवाला और उसका जो कर्म-कार्य, किसी भी पदार्थ का—चैतन्य का या जड़ का... उसमें से ऐसा ही निकला कि आत्मा में जो विकार होता है, तो कर्ता (जड़) कर्म और कार्य विकार—ऐसा है ही नहीं। यह बड़ी चर्चा हुई थी १३ के वर्ष में। नहीं। कर्म के निमित्त बिना विकार होता है? यहाँ कहे कि विकार होने में—विकार के कार्य में कर्ता यह जीव की पर्याय है। पर्याय कहो या जीव कहो। परन्तु उसमें कर्म की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा!

तो यह भी आया कि अपने में ज्ञान का जो क्षयोपशम होता है, ज्ञान की शुद्धि की वृद्धि होती है। भले अज्ञान हो थोड़ा, परन्तु उसमें कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा है नहीं। उसमें आता है या नहीं? पण्डितजी! उसमें यह आया या नहीं? ज्ञानावरणीयकर्म

का क्षयोपशम होता है तो आत्मा में ज्ञान का विकास होता है, ऐसी अपेक्षा है ही नहीं। बडी चर्चा हुई थी १३ के वर्ष में। नहीं, कर्म का उघाड़ हो तो यहाँ (ज्ञान का) क्षयोपशम होता है। कर्म का उदय हो तो यहाँ विभंगावधिज्ञान होता है। कहा, ऐसा है नहीं। ये तो १३ के वर्ष, २२ वर्ष पहले की बात है। हम तो ७१ के वर्ष से कहते हैं, ६५ वर्ष पहले से।

मुमुक्षु : करणानुयोग की भाषा ऐसी है कि

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा ही कहते हैं। कर्म से विकार होता है और विकार हुआ तो कर्मबन्धन होता है। दोनों आमने-सामने विकार हुआ तो कर्म की अपेक्षा और कर्म का बन्धन हुआ तो राग-द्वेष की अपेक्षा है। परन्तु यहाँ मना करते हैं। विकार हुआ तो कर्म की अपेक्षा है नहीं। **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया...** है? आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो द्रव्यानुयोग में लिखा है, करणानुयोग में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही चीज़ है। द्रव्यानुयोग से दृष्टि करे और बाद में तीन योग वांचे तो दृष्टि में बैठे। उसमें लिखा है मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने। द्रव्यानुयोग से दृष्टि मिले वापस, उस दृष्टि के प्रमाण से चरणानुयोग पढ़े तो बैठेगा, नहीं तो नहीं बैठेगा। उसमें है। ये तो ८२ के वर्ष में मिला था मोक्षमार्गप्रकाशक। जब हम पढ़ते थे तो धुन चढ़ गयी थी। खाना-पीना, आहार लेने जाना, किसी (चीज़ की) रुचि नहीं—ऐसा हो गया था। मोक्षमार्ग ८२... ८२। कितने वर्ष हुए? ५३ वर्ष पहले राजकोट में।

मुमुक्षु : कितना आश्चर्य हुआ था, उस समय आपको ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे नहीं, अपनी पर्याय की योग्यता ऐसी थी। आहाहा!

४ वर्ष पहले ७८ में समयसार मिला। ५७ वर्ष हुए। ७८ में... आहा! पहले ७७ में मिला था, हाथ में आया, पश्चात् दे दिया। कहा, पढ़ने का समय नहीं है। ७८ में पढ़ा। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार। फाल्गुन मास में। ७८ का फाल्गुन। सभी शास्त्र उपाश्रय में पढ़ते थे। एक बार व्याख्यान देकर हम यही पढ़ते थे। और आठम और पूनम के दिन...

उसमें (स्थानकवासी में) पूनम मानते हैं। आठम और पूनम और आठम और

अमावस मानते हैं। उस दिन उपवास रखते थे। एक महीने में चार चोविहारा। चोविहारा अर्थात् पानी का बूँद नहीं। तो एक व्याख्यान देकर हम तो जंगल में चले जाते थे। ७८ की बात है। सुबह में एक व्याख्यान देकर... उस दिन उपवास रखते थे। आठम और पूनम, अमावस। दो आठम और एक पूनम और अमावस। व्याख्यान देकर जंगल में चले जाते थे। एक मील दूर। कोई मनुष्य नहीं। लाखों गाड़ी मिट्टी निकला एक खड्डा था, उसमें चले जाते थे। अकेले... व्याख्यान के बाद से लेकर शाम को पाँच-छह बजे तक अकेले रहते थे। पानी-बानी पीते नहीं थे, उस समय उपवास। ७८ में पहले समयसार मिला। जंगल में पढ़ा।

ओहोहो! यह चीज.... यह तो मैंने सम्प्रदाय में भी कहा था। शरीर रहित होने की चीज़ हो तो यह है। सब शास्त्र श्वेताम्बर के भले हो, परन्तु शरीर रहित होने की चीज़ तो ये समयसार है। ऐसा भाव अन्दर आना, यह शरीर रहित होने की चीज़ है। आहाहा! यह चीज़ तो निमित्त है। आहाहा! समझ में आया? यह एक शब्द तो गजब काम का है। लालचन्दभाई! कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... आहाहा! महासिद्धान्त... आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा! किसी भी द्रव्य-पदार्थ की पर्याय जिस समय में होनेवाली (है, वह) होगी, उस कार्य का कर्ता ये द्रव्य है। यह पर्याय का—कार्य का कर्ता द्रव्य है और वह पर्याय कर्म है। ये पर्याय में परद्रव्य की कोई अपेक्षा है नहीं। हो, निमित्त हो। प्रत्येक पदार्थ के कार्यकाल में निमित्त तो होता ही है। अनादि-अनन्त जो द्रव्य की पर्याय होती है, पर्याय अपने से होती है, उस समय निमित्त तो होता ही है, परन्तु निमित्त की अपेक्षा से यह पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब निमित्तों को धर्मद्रव्य के समान समझना।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मद्रव्य कहा न? इष्टोपदेश में आता है। हमारे यहाँ सब बात आ गई है। जैसे (जीव) स्वतन्त्रता से अपनी गति करता है, तो धर्मास्ति को निमित्त कहने में आता है। इष्टोपदेश में ऐसा कहा है। धर्मास्तिकायवत्। सब द्रव्य धर्मास्तिकायवत्... निमित्त कैसा है? धर्मास्तिकायवत् है। यहाँ तो यह कहते हैं कि निमित्त की यहाँ अपेक्षा ही नहीं है। आहाहा! निमित्त हो, परन्तु निमित्त की अपेक्षा पर्याय—कार्य करने में है ही

नहीं। जड़ का और चेतन का जिस समय का कार्य है, उसका कर्ता और कार्य स्वद्रव्य में है। स्वद्रव्य कर्ता और स्वद्रव्य की पर्याय कार्य है। परद्रव्य के निमित्त की अपेक्षा उसमें है नहीं। आहाहा!

यहाँ कलाई में घड़ी रहती है... यह सेठ को देखकर विचार आया। घड़ी रही है, यह कलाई के आधार से रही है—ऐसा है नहीं। हाथ के आधार से रही है, यह है ही नहीं। आहाहा! लकड़ी का सहारा लेते हैं वृद्ध लोग... यह है न? तो (लकड़ी) जमीन को छूती है? कि नहीं? जमीन को छूती ही नहीं। हाथ में पकड़ी है तो हाथ भी लकड़ी को छुआ ही नहीं। आहाहा! संयोग से देखते हैं, ये संयोग (दृष्टि) के कारण से दिखता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप कहते हो तो मानना ही पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। धन्नलालजी ठीक कहते हैं। न्याय से जैसा है, ऐसा मानना पड़ा। न्याय अर्थात् 'नि' धातु है। 'नि' धातु (का अर्थ) वस्तु का जैसा स्वरूप है, उस तरफ ले जाना उसका नाम न्याय। न्याय से समझना। ऐसे कहते हैं तो मान लेना, ऐसा नहीं। न्याय में 'नि' धातु है। 'नि' धातु का अर्थ ये है कि ले जाना। ऐसी चीज है उस तरफ ज्ञान को (ले) जाना उसका नाम न्याय। प्रत्येक चीज़ अपने समय में आगे-पीछे हुए बिना अपने काल में पर्याय होती है, उस पर्याय को परद्रव्य की अपेक्षा बिल्कुल किंचित् होती नहीं। आहाहा! कपूरचन्दजी! ऐसी बात है।

भगवान के दर्शन करने से शुभभाव होता है, उसकी मना करते हैं यहाँ। शुभभाव होता है, उसमें भगवान के निमित्त की अपेक्षा नहीं। आहाहा! गजब बात है! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। कोई भगवान ने बनाया नहीं। जैसा है, वैसा कह दिया, (भगवान) कर्ता नहीं। आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि खिरती है तो दिव्यध्वनि का कार्य भगवान का है ऐसा भी नहीं। भगवान की दिव्यध्वनि 'भविजन जोग...' आता है न वह? 'भवि भागन वचन योग...' यह भी निमित्त का कथन है। 'भवि भागन वचन योग...' यह निमित्त का कथन है। वाणी के काल में परमाणु की पर्याय भाषारूप होने की थी, उस पर्याय को आत्मा की अपेक्षा नहीं और सुननेवाले की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! तेरी प्रभुता का पार नहीं। आहाहा!

यहाँ अपने में सम्यग्दर्शन जब होता है तो उसमें राग और निमित्त की अपेक्षा नहीं। कर्ता-कर्म... कर्ता आत्मा और सम्यग्दर्शन पर्याय कार्य, यह भी व्यवहार है। बाकी पर्याय कर्ता और पर्याय कार्य है, उसमें निमित्त की अपेक्षा नहीं। आहाहा! कि गुरु मिले, और तीर्थकर मिले, इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! देशनालब्धि मिलने से ज्ञान होता नहीं। देशनालब्धि के काल में जो पर्याय हुई, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है, वह भी देशना शब्द से हुआ नहीं। उस समय में परलक्ष्यी इतना विकास होने का पर्याय का काल था, तो ऐसा हुआ है। आहाहा!

यहाँ तो जहाँ हो वहाँ हम करते हैं... हम करते हैं... सम्पूर्ण व्यवस्था हम करते हैं... पूरे दो करोड़ रुपये... भभूतमलजी... आहाहा! ये तो दृष्टान्त है। ५० करोड़ रुपये का (आसामी) आया था न हमारे पास मुम्बई में? चिमनभाई का सेठ वैष्णव है। पचास करोड़। परन्तु स्त्री (-पत्नी) श्वेताम्बर जैन है। लड़के आदि सब सभी वैष्णव, उसकी सब स्त्रियाँ जैन श्वेताम्बर। आया था। विनती भी की थी, महाराज! हमारे घर पर पधारो। सबका भाव है। गये थे। १५०० रुपये रखे थे। पहले आये थे व्याख्यान में तब हजार रुपये रखे थे। होनेवाले, रहनेवाले परमाणु वहाँ रहे, जहाँ जाना है, वहाँ जाता है। वह कहे कि मैंने दिये और दूसरा कहे, मेरे को मिला, (झूठ है)। अरे रे! बहुत अन्तर है भाई! वीतरागमार्ग। आहाहा!

पैसे की पर्याय... शास्त्र में आता है, मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी आता है। साता वेदनीय के उदय से शरीर मिले, संयोग अनुकूल मिले—ऐसा आता है। ये निमित्त से बात है। उसमें निमित्त कौन था?—(इतना बताना है)। बाकी शरीर में रोग होता है, ये असाता के उदय से (होता है), यह निमित्त का कथन है। रोग होता है शरीर की पर्याय में, उसमें असाता के उदय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! डाह्याभाई! चतुराई उड़ जाये ऐसा है। दुनिया के चतुराई उड़ जाये ऐसा है। आहाहा! पैसा लेना-देना, मैं पैसा दे सकता हूँ... पैसे का कर्ता-कर्म तो पैसा (स्वयं) था। पैसे का परमाणु कर्ता और जाने की क्रिया उसका कार्य है। देनेवाला ऐसे माने कि मैंने दिया, मिथ्याभ्रम है। आहाहा!

आगे पैसेवाले बैठे हैं। यह सेठ पैसेवाले हैं। भभूतमलजी, कपूरचन्दजी हैं।

बहुत लाखोंपति हैं। बहुत लाखोंपति हैं। थोड़े लाखोंपति ऐसे नहीं। ज्ञानचन्दजी! तुम्हारी इज्जत तो बहुत है वहाँ। सेठ बड़े पैसेवाले हैं। पैसेवाला आत्मा है? कितना वाला है? एक वाला निकले पैर में, तो शोर मचाये। आहाहा! पानी खारा बहुत हो, ...का पानी हो तो वाला निकलता है। यह तो कितने वाला? पैसेवाला, स्त्रीवाला, कुटुम्बवाला, इज्जतवाला, लड़केवाला, लड़कीवाला, जमाईवाला। कितने वाला? आहाहा! किसका पुत्र, किसका पिता? प्रभु ऐसे कहते हैं। बाप की पर्याय का कर्ता बाप का आत्मा है, लड़के की पर्याय का कर्ता उसका आत्मा है। तो लड़का उसका कहाँ से आया? और लड़के का बाप... परन्तु बाप आया कहाँ से? प्रभु! ऐसी बात है, भाई! बाहर में तो सुनने मिलती नहीं। सेठ दरकार छोड़कर चले आये, सम्प्रदाय की दृष्टि रखे तो यह सके नहीं। ऐसी तो बात चलती नहीं वहाँ। यहाँ का विरोध करते हैं। अरे प्रभु! ये बात हमारे घर की नहीं, ये वस्तु का स्वरूप है। आहाहा!

प्रत्येक पदार्थ में जिस समय में पर्याय उत्पन्न (होने) का काल है, उस समय में उत्पन्न होगी। निमित्त होता है, परन्तु निमित्त से उत्पन्न हुई, ऐसी अपेक्षा है नहीं। आहाहा! तत्त्वार्थराजवार्तिक में भी ऐसा आया है। एक कार्य में दो कारण हैं—उपादान, निमित्त। तत्त्वार्थराजवार्तिक में है। एक कार्य में दो कारण हैं—उपादान और निमित्त। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। बाकी उपादान की पर्याय होने में कोई निमित्त की अपेक्षा है ही नहीं। समझ में आया? तो अभी पण्डित ऐसे कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ में उपादान की अनेक योग्यता हैं, परन्तु जैसा निमित्त मिले, वैसा कार्य होता है। अरर! नहीं तो एकान्त है... एकान्त है... ठीक प्रभु! यह क्रमबद्ध में डाला है। क्रमबद्ध की विशेष पुष्टि का कारण यह है। आहाहा! यह शब्द उसमें डाले हैं, उसका कारण है कि जिस पदार्थ की जिस समय में पर्याय उत्पन्न होगी, उसमें उत्पाद्य—उत्पन्न होनेयोग्य और उत्पादक दूसरी पर(चीज़) ऐसा है ही नहीं। ये आ गया है। उत्पाद्य—उत्पादक। ऊपर। है न?

जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता है, तथापि उसका अजीव के साथ कार्यकारणभाव सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सर्व द्रव्यों का अन्यद्रव्य के साथ उत्पाद्य—उत्पादकभाव का अभाव है। है? प्रत्येक द्रव्य की पर्याय में पर्यायरूपी उत्पाद्य और

निमित्त उत्पादक—ऐसा अभाव है। आहाहा! बहुत कठिन अपूर्व बात है, प्रभु! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की यह दिव्यध्वनि है। आहाहा! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। ऐसा होता है... ऐसा होता है... व्यवहार से निश्चय होता है... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि अपनी निश्चय पर्याय स्वद्रव्य के आश्रय से हुई है, उसका कर्ता आत्मा और कर्म निर्मल पर्याय—धर्म है, उसमें राग की या पर की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! व्यवहार राग की मन्दता थी, तो निश्चय सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, (ऐसा अज्ञानी मानते हैं)। क्योंकि जब सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है तो उसके पहले शुभभाव (होता है)। अशुभभाव हो और पश्चात् समकित होता है, ऐसा होता नहीं। क्या कहा? जब सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, तब उसके पहले शुभभाव ही होता है। अशुभभाव हो और समकित दर्शन हो, ऐसा (होता) नहीं। क्योंकि मैं आनन्द हूँ, शुद्ध हूँ, ऐसा विकल्प आया—यह शुभभाव है। शुभभाव है तो सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, ऐसा है नहीं। सम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेयोग्य—उत्पाद्य और राग-विकल्प उत्पादक (अर्थात्) उत्पन्न करानेवाले—ऐसा है नहीं।

ये इतने में लिखा है। भाई आये हैं या नहीं आये? ज्ञानचन्दजी नहीं आये। भाई कहते थे कि आनेवाले हैं। नहीं आये। दिख नहीं रहे। आनेवाले थे। बहुत नरम व्यक्ति हैं ज्ञानचन्दजी। नरम व्यक्ति। हुकमचन्दजी, ज्ञानचन्दजी, बाबूभाई उनका प्रभावना में बहुत हाथ है, निमित्त है।

मुमुक्षु : निमित्त से काम होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहाँ-जहाँ प्रभावना की पर्याय होनेवाली है, वहाँ निमित्त कहने में आता है, परन्तु निमित्त की अपेक्षा प्रभावना की पर्याय में नहीं। आहाहा! है या नहीं उसमें? देखो! कर्ता-कर्म की... किसी भी पदार्थ में पदार्थ कर्ता होकर कर्म अर्थात् पर्याय का कार्य हुआ, उस समय के कार्य में अन्यद्रव्य से निरपेक्षतया, स्वद्रव्य में ही... परद्रव्य की अपेक्षा नहीं और अपने स्वद्रव्य में सिद्धि होने से स्वद्रव्य की पर्याय, वह पर्याय कार्य और स्वद्रव्य उसका कर्ता (ऐसा) व्यवहार है। बाकी पर्याय कार्य और पर्याय कर्ता, यह स्वद्रव्य में है। परन्तु पर्याय कार्य और निमित्त कर्ता, ऐसी कोई चीज

है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ये दो अधिकार लिये हैं, (एक) क्रमबद्ध लिया है, (दूसरा) शुद्धभाव अधिकार। ४५ वर्ष हुए यहाँ। ४५ वर्ष में शिक्षण शिविर... ४५ वर्ष, यहाँ आने (के बाद) ४५ वाँ चातुर्मास हुआ। ४५—४ और ५। (संवत्) १९९१ में आये थे, (संवत्) ९१ फाल्गुन कृष्ण तीज, तुम्हारी चैत्र कृष्ण तीज। तो यहाँ ४४ वर्ष के ऊपर चार मास हो गये। यहाँ तो शिक्षण शिविर हर वर्ष चलता है। कहा, ४५ वर्ष हुए और बहुत लोग आये हैं। यह बात प्रभु! अन्तर में बैठनी (चाहिए), भाषा से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब बात तो सोनगढ़ से निकाली है। यह बात आपने सोनगढ़ से निकाली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निमित्त से कथन है। बात तो ऐसी है। समझ में आया? गये थे वहाँ, वर्णीजी के साथ चर्चा बहुत हुई थी। नहीं तो वर्णीजी तो दिगम्बर सम्प्रदाय में बड़े इज्जतदार हैं। उनको भी ये बात नहीं मिली थी। क्रमबद्ध नहीं। क्रमबद्ध है सही, परन्तु इस पर्याय के पीछे यही पर्याय होगी—ऐसा नहीं। कहा, नहीं, इस पर्याय के बाद यही पर्याय होगी, ऐसी क्रमबद्ध की व्याख्या है। बहुत (लोग) बैठे थे, सब थे। हमारे रामजीभाई थे, बंसीधरजी थे, कैलाशचन्दजी थे। यात्रा गये थे न पहली बार १३ के वर्ष में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान के दर्शन से शुभभाव हुआ, ऐसा है नहीं। उस समय में शुभभाव होने के क्रम में आनेवाली पर्याय है। निमित्त—भगवान के दर्शन से शुभभाव हुआ, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात। यह सब ऐसा मानने के बाद कोई करेगा नहीं। परन्तु करता है कौन? मात्र उसकी समझण में अन्तर है। बाकी तो होनेवाली (है वह) होगी पर्याय। समझ में अन्तर है। मैं भगवान का दर्शन करता हूँ, दर्शन किया तो मुझे शुभभाव हुआ। घर पर स्त्री के पास थे, तब शुभभाव क्यों नहीं था? यहाँ मैं आया, भगवान का दर्शन किया तो शुभभाव हुआ। झूठ बात है। और स्त्री के पास था, तब अशुभभाव था, यह स्त्री के कारण से हुआ? निरपेक्षतया अशुभभाव तेरे से हुआ है। पर की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! पण्डितजी! ऐसी बात है, प्रभु!

अलौकिक बात है। इस एक शब्द में तो पूरे बारह अंग का सार है। आहाहा!

क्रमबद्ध की सिद्धि में यह आया है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उस समय में क्रम से होनेवाली है, तो किसी निमित्त की अपेक्षा उसको नहीं, उसमें यह आया है। आहाहा! कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... प्रत्येक पदार्थ में जिस समय में जो पर्याय होती है... यहाँ तो निर्मलता की बात है क्रमबद्ध में। निर्मल पर्याय जो होती है, उसमें कर्ता आत्मा और निर्मल पर्याय कर्म है। कर्म का क्षयोपशम हुआ तो समकित हुआ, ऐसा है नहीं। समझ में आया? ज्ञान में हीनाधिकता होती है... यह चर्चा हुई थी वहाँ। पुस्तक में है। उसने पुस्तक छपाया है। जमादार है न बाबू? कौन? बाबूलाल जमादार। वर्णीजी ने यहाँ का विरोध किया था न? यह छापा है कि देखो! वर्णीजी भी ऐसे कहते हैं। यात्रा में गये थे पहले, उस वक्त भी कहा था कि जिस समय में पर्याय होगी, उसको निमित्त की, पर की अपेक्षा है नहीं। अपने में... विकार का प्रश्न हुआ था। विकार है, उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा है नहीं। देखो! संस्कृत टीका पंचास्तिकाय ६२ गाथा। पर कारक की अपेक्षा है ही नहीं। ऐसा संस्कृत है पण्डितजी! पर कारक की—कर्ता-कर्म की कोई अपेक्षा है ही नहीं। विकार होने में भी कर्म की अपेक्षा नहीं, तो प्रभु! धर्म की पर्याय होने में पर की अपेक्षा तो है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन बात लगे।

मुमुक्षु : वे तो विरोध करने के लिये वर्णीजी की प्रतिष्ठा का फायदा उठाते हैं बाबूलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उठावे। देखा है। मार्ग तो यह है। आहाहा! यह तो ढिंढोरा पीटकर कहने में आता है। अन्दर लिखा है या नहीं? क्रमबद्ध की पुष्टि में ये बात ली है।

पहले शुरु किया है कि प्रत्येक जीव और अजीव अपने समय में उत्पन्न होनेवाली पर्याय का उत्पादक है, पर नहीं। और यह भी उसी समय में, आगे-पीछे नहीं। किसी द्रव्य की पर्याय आगे-पीछे कर सके ऐसा (होता नहीं)। स्वद्रव्य भी ऐसा न कर सके। परद्रव्य की तो अपेक्षा नहीं, आहाहा! परन्तु स्वद्रव्य भी पर्याय आगे-पीछे कर सके,

ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! क्रमबद्ध का निर्णय करने में यह सार आया है। उसका सार यह आया है। समझ में आया? $५ + ५ = २५$, योगफल (-परिणाम) क्या आया? २५ आया। ऐसे ये क्रमबद्ध का योगफल (-सार) क्या? परमाणु जड़ और चैतन्य... लाख, करोड़, अनन्त परमाणु हैं और अनन्त आत्मा हैं... निगोद के जीव में भी कर्म से हीन दशा हुई, ऐसा है नहीं।

निगोद के जीव में... ऐसे कहते हैं कि जब तक ऐकेन्द्रिय जीव है, इसलिए कर्म का जोर है। मनुष्यादि होता है, पश्चात् आत्मा का जोर चलता है। यहाँ तो कहते हैं कि प्रत्येक समय में अपनी पर्याय का कर्ता आत्मा है। निगोद में भी... निगोद समझे? लहसुन, प्याज, काई (आदि) अनन्त जीव हैं। अनन्त जीव में प्रत्येक जीव के दो-दो शरीर हैं—तैजस, कार्मण। अँगुल के असंख्य भाग में अनन्त जीव हैं, उसमें अनन्त शरीर भी हैं। एक परमाणु की पर्याय दूसरे परमाणु को निमित्त हो, परन्तु ये निमित्त की अपेक्षा से परमाणु में पर्याय हो, ऐसा है नहीं और कर्म के उदय से निगोद की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। आहाहा!

निगोद की पर्याय जो हुई, वह उसी समय होनेवाली थी, यह पर की अपेक्षा बिना (हुई है)। पर के कर्ता-कर्म की अपेक्षा बिना उस पर्याय का कर्ता जीव है और यह पर्याय उसका कार्य है। आहाहा! गजब बात, भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा आया है कि नदी में चलते पानी का बहुत जोर हो तो रोक नहीं सकता आत्मा। नदी का दृष्टान्त है। यह तो निमित्त का कथन है। बाकी उस समय भी पानी के प्रवाह में... आहाहा! ऐसा शरीर चलता है, वह अपनी पर्याय से अपने कर्ता-कर्म से चलता है, पानी के कारण से नहीं। आहाहा! एक ब्रह्मचारी था तो मोटर में बैठा था। मोटर में बैठा तो ऐसा कहा कि सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं कि हम मोटर से नहीं चलते। मोटर चलती हो और अन्दर बैठे हो... मोटर चलती हो तो शरीर चलता है, ऐसा है ही नहीं। अन्दर शरीर की गति करने में मोटर की अपेक्षा है ही नहीं। यह बात...

मोटर में बैठे हैं... मोटर चलती है... मोटर पहिये से चलती है, ऐसी अपेक्षा भी नहीं।

मुमुक्षु : पेट्रोल से तो चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पेट्रोल से चलती नहीं। नाम सोनगढ़ का देते हैं कि सोनगढ़ की मोटर पेट्रोल के बिना चलती है—ऐसा सब लोग कहते हैं। यह बात अपूर्व है। और अपनी मोटर पेट्रोल से चले। यहाँ कहते हैं कि पेट्रोल की पर्याय का कर्ता पेट्रोल है। मोटर चलती है, उसका कर्ता मोटर का परमाणु है। पेट्रोल से मोटर चलती है, यह बात सत्य है नहीं। यह बात बाहर आयेगी। सोनगढ़ की मोटर पेट्रोल बिना चलती है। अरे! सोनगढ़ की मोटर है ही नहीं। मोटर मोटर की है। आहाहा! मोटर की चलने(रूप) पर्याय जो होती है, उसमें ड्राईवर का कारण—अपेक्षा नहीं। उसके नीचे है... क्या कहलाये? पहिया। उसको भी मोटर की अपेक्षा नहीं। मोटर में बैठे हैं और मोटर चलती है तो शरीर ऐसा गति करता है, ऐसा भी नहीं। शरीर की पर्याय का कर्ता उस समय में शरीर का परमाणु है। अन्दर में बैठे हैं तो मोटर से शरीर चलता है, ऐसा भी नहीं। अरे गजब! सोनगढ़ का नाम लेकर कहते हैं लोग। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो न!

कर्ता-कर्म की... कोई भी द्रव्य कर्ता होकर कार्य उस समय में होता है, उसमें कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं। परपदार्थ की उसमें अपेक्षा है नहीं। आहाहा! रोग होता है और दवा से मिटता है, ऐसी अपेक्षा है नहीं—ऐसा कहते हैं। अरे! गजब बात है। आयुर्वेद का लिया है तत्त्वार्थराजवार्तिक में। आयुर्वेद की दवा से मिटता है... दवा से मिटता है—ऐसा है नहीं। यह तो व्यवहार से कथन किया है। आहाहा! शरीर में—परमाणु में रोग जो होता है तो असाता के कारण से हुआ है, ऐसा नहीं। असाता जड़(कर्म) दूसरी चीज़ है और यह दूसरी चीज़ है। रोग होने में असाता के उदय की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात सुनना कठिन पड़े।

कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... यह तो महासिद्धान्त है। चौदह ब्रह्माण्ड का सिद्धान्त है। आहाहा! अनन्त तीर्थकर, अनन्त केवली, अनन्त सन्त, अनन्त समकिती ने इस प्रकार से मानकर दुनिया को ऐसा कहा है। 'कहा है' यह कार्य का कर्ता भी वाणी है। आहाहा! कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया (अन्यद्रव्य से निरपेक्षतया... पर की

अपेक्षा बिना प्रत्येक द्रव्य की पर्याय स्वद्रव्य से होती है। है ? स्वद्रव्य में ही सिद्धि होने से... उस द्रव्य की पर्याय उस द्रव्य में अपने से सिद्धि होने से... आहाहा! जीव के अजीव का कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। जीव अजीव का कार्य करे ऐसा सिद्ध नहीं होता। जीव अपनी पर्याय को करे और पर की भी करे, (ऐसा माने) तो दो क्रियावादी मिथ्यादृष्टि होता है। समयसार में आता है... समयसार में आता है। अपनी पर्याय भी करे और पर की भी करे, एक द्रव्य दो क्रिया करे, (ऐसा माने) तो मिथ्यादृष्टि है। अज्ञानी है। जैन की खबर उसको नहीं। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ५, शनिवार, दिनांक-२८-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-८

पहले भाग का थोड़ा लेते हैं। बाकी है न? पहले का बाकी है। पीछे है। एक लाईन फिर से (लेते) हैं। एक घण्टा रहा है तो थोड़ा लेते हैं। ज्ञानचन्द्रजी आये हैं न? उसने कहा। बहुत सूक्ष्म अपूर्व बात है। क्रमबद्ध जो कहा... प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जिस समय में जब जो होनेवाली है, वह होगी। उसके बाद के समय में होनेवाली है, (वही) होगी। उसमें कोई द्रव्य भी अपनी पर्याय में फेरफार नहीं कर सकता। आहाहा! जब प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय का भी फेरफार—आगे-पीछे कर सकता नहीं तो परद्रव्य से उसमें पर्याय हो, यह तो है नहीं। यह यहाँ कल अपने चला था।

कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... प्रत्येक पदार्थ वर्तमान समय में अपना कर्ता अर्थात् स्वतन्त्र होकर... कर्ता अर्थात् स्वतन्त्र होकर (करे)। वर्तमान पर्याय जो है, यह उसका कर्म अर्थात् कार्य है। कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति परद्रव्य से निरपेक्षतया है। परद्रव्य निमित्त है तो यहाँ ऐसा होता है, ऐसा है नहीं। कथन आये। दोपहर को कथन आया था न? कि कर्म के क्षय से हुआ क्षायिक(भाव)। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया। क्षायिक—केवलज्ञान पर्याय होती है, तो पर निमित्त की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु पूर्व पर्याय की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है, बहुत सूक्ष्म अपूर्व है।

प्रत्येक पदार्थ की अपने स्वकाल में जन्मक्षण—उत्पत्ति काल में अपने समय से पर्याय उत्पन्न होती है, वह आगे-पीछे भी होती नहीं और पर से होती नहीं। पर की अपेक्षा भी नहीं। जो पर्याय अपने समय में होनेवाली है, वह सत् है। चाहे तो विकार हो या अविकार हो, यहाँ तो अविकार की बात है।... षट्कारक के परिणामन में विकृति है, उससे रहित होना यह अपना स्वभाव-गुण है। षट्कारक से विकृत अवस्था—पर्याय होती है, उससे रहित होना, ऐसा अपने में क्रिया नाम का गुण है। आहाहा! भाव नाम का या क्रिया (नाम का), दोनों में से एक शब्द है। पर से रहित होना, वह अपना गुण है, राग सहित होना, वह अपनी गुणदशा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया...** आहाहा! जिस समय में

द्रव्य की पर्याय होती है, उसमें अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं। आहाहा! केवलज्ञान होता है, (उसमें) कर्म के क्षय की अपेक्षा नहीं। क्षय हो। क्षय की व्याख्या? कर्मरूप परिणमन जो है, वह दूसरे समय अकर्मरूप हो, वह क्षय है। क्षय का अर्थ कुछ नाश होता है, ऐसी चीज़ नहीं। कर्मरूप पर्याय थी, यह अकर्मरूप हो गयी, उसे कर्म का क्षय कहने में आया है। तो यह कर्म के क्षय की (अपेक्षा) भी अपने में केवलज्ञान उत्पन्न होने में या सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने में (है नहीं)। सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने में दर्शनमोह के अभाव की अपेक्षा उसमें है नहीं। आहाहा! यह तो करनेयोग्य अपनी चीज़ में है। अपनी पर्याय अपने से है, उसमें पर की कोई अपेक्षा (नहीं) कि निमित्त है तो हुआ। कथन आये। उचित निमित्त होता है, अनादि-अनन्त प्रत्येक पर्याय में जिस-जिस समय में जो होनेवाली पर्याय है, उसमें सामने अनुकूल-उचित निमित्त होता है, परन्तु यह उचित निमित्त है तो पर्याय होती है, ऐसी अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत अपूर्व बात है, प्रभु! आत्मा का हित कोई अलौकिक है, यह साधारण किसी प्रकार से हो जाता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा!

वैराग्य कहा न वैराग्य? वैराग्य तब होता है कि जब अपनी सम्यग्दर्शन की पर्याय अपने द्रव्य के अवलम्बन से हुई, तब सम्यग्दर्शन की पर्याय के काल में शुभ-अशुभभाव से विरक्त होना, यह वैराग्य है... यह वैराग्य है। त्रिकाली ज्ञायकभाव की ज्ञान में प्रतीति होकर अनुभव होना... अनुभव होकर प्रतीति होना... आहाहा! उसमें परद्रव्य की कोई अपेक्षा (नहीं) कि कर्म... कर्म... कर्म... कर्म हटे तो ऐसा होता है और कर्म का उदय आये विकार होता है। यह सब बात झूठ है। शास्त्र में यह कथन आये तो वह भी झूठ है—व्यवहार है। कलशटीका में बहुत बार लिखा है। राजमलजी। झूठा व्यवहार... झूठे व्यवहार से कथन है, सत्य नहीं। सत्य व्यवहार तो अपनी पर्याय अपने से हुई, यह भी सद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा! अपने द्रव्य से धर्म की पर्याय अपने द्रव्य के आश्रय से हुई, यह भी सद्भूतव्यवहार है। निश्चय से तो उस समय की पर्याय को द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं, निमित्त की अपेक्षा नहीं।—ऐसी पर्याय सत् है, उसको किसी हेतु की आवश्यकता नहीं। अहेतुक है। इतना शब्द कल एक घण्टे में लिया।

कर्ता-कर्म की.... किसी भी द्रव्य की पर्याय में कर्ता-कर्म भिन्न होता है, ऐसा है नहीं। वह-वह द्रव्य कर्ता और उस-उस द्रव्य की अपनी पर्याय कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा! यह कर्ता-कर्म यह भी उपचार से कथन है। दो भाग पड़ गये न? आहाहा! बाकी निर्विकारी पर्याय—धर्म होता है, वह अपने से होता है, उसको कोई अपेक्षा है ही नहीं। पर की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु निश्चय से सत् है... सम्यग्दर्शन सत् है और ये (सम्यक्) दर्शन द्रव्य के लक्ष्य से होता है। तथापि द्रव्य और गुण की अपेक्षा उसको है नहीं। आहाहा! ऐसी बात मुश्किल पड़े। समझ में आया? अरे! कब समझे? बापू! मनुष्यभव अनन्त काल से मिला है, इसमें यह न समझेगा तो सारा मनुष्यपना व्यर्थ हो जायेगा। कहाँ जन्म लेगा ८४ लाख योनि में, इसका कोई पता नहीं।

यह यहाँ कहते हैं, **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... अन्यनिरपेक्ष...** कोई अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! शास्त्र में अपेक्षा का ज्ञान तो बहुत आता है। तो कहा कि निमित्त है, उसका ज्ञान कराने को कहा। मोक्षमार्गप्रकाशक में है कि व्यवहार कहा है, वह निमित्त का ज्ञान (कराया)। व्यवहार कहता है ऐसा है नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में है। व्यवहार कहता है ऐसा है नहीं। परन्तु व्यवहार निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है। दूसरी चीज़ है, उसका ज्ञान (कराया), परन्तु दूसरी चीज़ से दूसरी चीज़ में कुछ हुआ, ऐसी कोई अपेक्षा वस्तु के स्वरूप में है नहीं। परमात्मा अपने स्वरूप की... ओहोहो! पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण स्वरूप है, उसमें प्रभुताशक्ति एक-एक गुण में प्रभुता से भरी पड़ी है। ऐसे अनन्त... अनन्त... गुण ईश्वरशक्ति से—प्रभुत्वशक्ति से (भरे हैं)। अपने प्रताप से स्वतन्त्रपने परिणमे, ऐसी प्रभुत्व नाम की शक्ति है, अनन्त गुण में प्रभुत्व नाम की शक्ति का रूप है। आहाहा!

तो अनन्त गुण जितने हैं, उनकी जो पर्याय होती है, उस पर्याय में गुण की अपेक्षा नहीं, परन्तु दूसरी पर्याय हुई तो यह पर्याय हुई। सम्यक् (दर्शन) की पर्याय हुई तो सम्यग्ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसी भी अपेक्षा नहीं। दूसरी पर्याय को दूसरी पर्याय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वह सत् है। सत् है, उसका हेतु होता नहीं। बन्ध अधिकार में लिया है, समयसार। द्रव्य अहेतुक, गुण अहेतुक, पर्याय अहेतुक।

बन्ध अधिकार में है। ऐसा यहाँ कहते हैं... यह समझना प्रभु! ये कोई (साधारण) बात नहीं। यह पढ़ लिया कि ऐसा कहते हैं... ऐसा कहते थे... ऐसा ज्ञान कर लिया, इसलिए समझ गया, ऐसी चीज़ नहीं, प्रभु!

कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षता... तीन लोक के नाथ की भी अपनी पर्याय में बिल्कुल अपेक्षा नहीं। भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञप्रभु उनकी तो अपेक्षा नहीं अपने सम्यग्दर्शन में, परन्तु उनकी वाणी की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? और शास्त्र जो बना है, उसकी भी सम्यग्दर्शन की पर्याय में अपेक्षा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सुनने से झटका सा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य... पुण्य नहीं। पुण्य से भी होता नहीं। अनुकूल निमित्त मिलता है, वह पुण्य से नहीं। क्योंकि पुण्य का परमाणु—जड़ भिन्न है और आनेवाली चीज़ भिन्न है। तो आनेवाली चीज़ को साता का निमित्त है तो आयी, ऐसी अपेक्षा है नहीं। आहाहा! शरीर में निरोगता हुई और सरोगता का व्यय हुआ, उसमें सातावेदनीय निमित्त हो, परन्तु उसकी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान त्रिलोक के नाथ के दर्शन करने से शुभभाव होता है, ऐसी कोई अपेक्षा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव की बात है नहीं। यहाँ तो शुभभाव के काल में जो अपनी जानने की—ज्ञाता-दृष्टा की पर्याय है, उसमें शुभभाव की अपेक्षा नहीं है और शुभभाव में भगवान की वाणी और भगवान की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी बात। यह तो निवृत्त तत्त्व है। प्रभु अन्दर तो निवृत्त तत्त्व है। निवृत्त तत्त्व समझे? कोई राग की प्रवृत्ति आदि का सद्भाव है ही नहीं। आहाहा! परद्रव्य से तो निवृत्त है, परन्तु राग, दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उससे भी निवृत्त तत्त्व है। कठिन बात, भाई! फिर भी व्यवहार आता है... व्यवहार आता है तो उस व्यवहार की अपेक्षा निश्चय को है नहीं। और व्यवहार आता है... शब्द में ऐसा आवे कि ज्ञानी को जब तक कर्म का जोर है तो राग आदि आ जाता है। अर्थ में लिखा है दो जगह पण्डित जयचन्द ने। हेमराज... धर्मों को अपने स्वरूप की प्रतीति अनुभव सम्यग्दर्शन स्वद्रव्य के अवलम्बन से हुआ, ऐसा कहने में आता है, परन्तु उसमें भी सम्यक् पर्याय हुई, वह षट्कारक से परिणमन करते

(हुई है)। षट्कारक में कर्तापने की बात है, पर्याय स्वयं कर्ता (होकर) स्वतन्त्रपने द्रव्य का लक्ष्य करती है, वह स्वतन्त्रपने करती है। आहाहा! ऐसी कर्ता-कर्म (आदि) षट्कारक की परिणति जो पर्याय में होती है, उसमें पर की अपेक्षा तो है नहीं, परन्तु उसके द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा!

कल तो दृष्टान्त-दृष्टान्त बहुत बार लिया था। ये तो ज्ञानचन्दजी ने कहा, कल का थोड़ा (लो)। हम दो दिन से आये नहीं न? (-अन्यद्रव्य से निरपेक्षतया...) अर्थात् (स्वद्रव्य में ही) सिद्धि होने से... अपनी पर्याय में स्वद्रव्य से सिद्धि होने से... वह स्वद्रव्य की पर्याय का काल है—जन्मक्षण है। प्रवचनसार में ९९ गाथा में हार का दृष्टान्त दिया है। हार... हार... जिस क्षेत्र में जो मोती है, वह वहाँ ही है। १०८ मोती। जिस स्थान में मोती (है, वह) वहाँ ही है, आगे-पीछे नहीं। आगे-पीछे करोगे तो हार टूट जायेगा। ऐसा भगवान आत्मा में जिस समय में जो पर्याय (होनेवाली है) वह होगी, आगे-पीछे नहीं। आगे-पीछे करने जाओगे तो द्रव्य की दृष्टि टूट जायेगी। द्रव्य की दृष्टि टूट जायेगी, द्रव्य कहाँ (टूटता है)? समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! यह तो थोड़ा ज्ञानचन्दजी... कल तो एक लाईन एक घण्टे ली थी। गजब बात है, बापू! यह तो अपूर्व बात है। यह कोई पक्ष की या सम्प्रदाय की बात नहीं। यहाँ तो ऐसी अपेक्षा कहकर भी... आहाहा!

त्रिलोकनाथ... असंख्य प्रतिमायें जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर असंख्य हैं। इन्द्र भी दर्शन करते हैं समकिति... समकिति... क्षायिक समकिति। आहाहा! ऐसा विकल्प आता है तो लक्ष्य वहाँ जाता है। ऐसी वस्तु की स्थिति है। एक ओर कहना कि भगवान की प्रतिमादि की भी... अरे! देव-गुरु की वाणी जो सच्ची वाणी है, उसकी पर्याय में अपेक्षा नहीं। आहाहा! दूसरे दिन ऐसे कहना कि अपना सम्यग्दर्शन अपने से हुआ, तो भी शाश्वत् जिनप्रतिमा है, उसका दर्शन क्षायिक समकिति करते हैं। आहाहा! यह विकल्प के काल में विकल्प आता है। यह विकल्प उससे हुआ, ऐसा नहीं। इन्द्र जब जन्मे पहले... सिद्धान्त में ऐसा (पाठ) है... एक अक्षर भी फेरफार हो जाये शास्त्र का तो दृष्टि विपरीत हो जाती है। इन्द्र जन्मता है तो पहले भगवान की (अकृत्रिम) प्रतिमा के दर्शन करने को जाता है, ऐसा सिद्धान्त में पाठ है। एकावतारी—एक भवतारी

सम्यग्दृष्टि हो, आहाहा! पर जब जन्मते हैं... जन्मते (कहने से) उनकी कोई माता है नहीं। फूल की शैय्या है, उसमें एकदम उत्पन्न हो जाते हैं। अन्तर्मुहूर्त में जवान शरीर जैसा शरीर उत्पन्न हो जाता है... फूल की शैय्या में एकदम। आहाहा!

ऐसा क्षायिक समकिति जीव हो, वह भी तुरन्त कहता है कि तैयारी करो, भगवान के मन्दिर में दर्शन (करने) जाना है। आहाहा! ऐसा सिद्धान्त है शास्त्र में। शास्त्र में न्याय से (विरुद्ध) एक भी अक्षर का फेरफार करे (तो) दृष्टि विपरीत है। समझ में आया? आहाहा! तो इन्द्र भी आकर (कहते हैं), तैयारी करो। आहाहा! देव ने हाथी का रूप धारण करे, इन्द्र ऊपर बैठे। हाथी का रूप, ऐरावत हाथी। आहाहा! भगवान के दर्शन करने को सारे देव करोड़ों देव साथ में लेकर जाते हैं। आहाहा! यह भाव आया, वह पुण्यबन्ध का कारण है। ये आये बिना रहे नहीं और वह धर्मस्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? धर्म नहीं, इसलिए (न) आये ऐसा नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को, क्षायिक समकिति को... शान्तिनाथ आदि कितने तीर्थकर क्षायिक समकित लेकर आते हैं, ९६००० (स्त्री के) साथ विवाह करते हैं। प्रतिदिन—एक-एक दिन में सैकड़ों रानियों से विवाह करते हैं। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित। यह चारित्र का दोष है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक ऐसा राग आता है। परन्तु आता है, वह धर्म है, ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ तो भगवान की भक्ति की, स्तुति की, (तो माने कि) धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! धूल में भी नहीं, अर्थात् यह पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं। वह तो पापानुबन्धी पुण्य है। समकिति की पूजा, भक्ति का राग पुण्यानुबन्धी पुण्य है। आहाहा! इतना सब अन्तर है। समझ में आया?

यह यहाँ कहने में आता है, (स्वद्रव्य में ही) सिद्धि होने से, जीव के अजीव का कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता। जीव में अपने अतिरिक्त पर का कर्तृत्व-करना (और) पर को रखना, ऐसा सिद्ध नहीं होता। इसलिए जीव अकर्ता सिद्ध होता है। आहाहा! यह सारांश। क्रमबद्ध में अकर्ता(पना) सिद्ध होता है, इस कारण से। अपनी पर्याय क्रमसर होती है उसमें पर की अपेक्षा नहीं। इस कारण क्रमबद्ध में अकर्ता(पना) सिद्ध होता है। आहाहा! ऊपर अकर्ता कहा न? ऊपर यह लिया है। आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक

सिद्ध करते हैं। ऊपर पहला शब्द है। यह अकर्तृत्व सिद्ध किया। आज तो आठवाँ दिन है। शनिवार से शुरु किया, आज शनिवार है। आहाहा! पार नहीं, प्रभु! गम्भीरता का पार नहीं। वीतराग की वाणी और उसका भाव सामान्य प्राणी नहीं समझ सके। आहाहा!

हम मलाड गये थे न? हमने देखा न, उनके लोग हैं, वे एकदम मूर्ति का विरोध करने लगे। मलाड गये तब। क्योंकि ये लोग मूर्ति को मानते नहीं। मूर्ति के पास जाये नहीं इसलिए एकदम मूर्ति विरोध के गीत गाने लगे। भगवान दास ने कहा, बन्द कर दे। कहाँ एकान्त हो जाता है, उसकी खबर नहीं लोगों को। आहाहा! प्रचार ही ऐसा है वहाँ। मूर्ति नहीं... मूर्ति नहीं... मूर्ति है नहीं... प्रतिमा है नहीं। यहाँ तो कहते हैं, शाश्वत् असंख्य प्रतिमा, असंख्य मन्दिर हैं। आहाहा! ये मन्दिर है तो उससे शुभभाव होता है, ऐसा है नहीं और यह शुभभाव है... जब तक वीतराग न हो, तो अपनी कमजोरी से शुभभाव आये बिना रहता नहीं, तथापि शुभभाव धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। अन्यनिरपेक्ष। राग की अपेक्षा बिना सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यहाँ कोई पक्ष नहीं, वाडा नहीं। यहाँ तो तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी भगवान फरमाते हैं, वह बात है। आहाहा! क्या कहें? क्या करे? समझ में आया? इसलिए जीव... वह पहले शब्द कहा था (कि) अकर्तापना दृष्टान्तपूर्वक सिद्ध करते हैं। तो क्रमबद्ध में अकर्तापना सिद्ध किया।

भावार्थ : सर्व द्रव्यों के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं... अर्थ करनेवाले (जयचन्दजी) कहते हैं, अपनी सादी भाषा में। सर्व द्रव्यों के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं, सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामों के कर्ता हैं। आहाहा! वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं प्रभु! आहाहा! वाणी जब होती है, वह अपने स्वकाल में वचन (-भाषा) वर्गणा से भाषारूप परिणमना (होता है), उस काल में भाषा होती है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा से नहीं। यह तो बोलते-बोलते अहंकार आ जाये कि मैं कैसा बोलता हूँ, मैं कैसा लोगों को सुनाता हूँ। आहाहा! अरे प्रभु! सर्व द्रव्य का उसका परिणाम स्वतन्त्र है। तेरी भाषा से उसका परिणाम आता है और भाषा की पर्याय तेरे से होती है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! बहुत कठिन काम। यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर परमात्मा की वाणी है।

सन्त आढृतिया होकर ये बात करते हैं। वहाँ गये थे, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य गये थे।

तो कहते हैं कि सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामों के कर्ता हैं। उन परिणामों के कर्ता हैं। वे परिणाम उनके कर्म हैं। देखो! जो द्रव्य का जो परिणाम उस समय... उस समय में होनेवाला हुआ। उसका कर्ता यह द्रव्य कहा यहाँ। अभी इतना भेद है। नहीं तो परिणाम का कर्ता परिणाम ही है। समझ में आया? आहाहा! ६२वीं गाथा पंचास्तिकाय (में आता है), विकार का परिणाम षट्कारक से अपने से होता है। कर्म की अपेक्षा नहीं, विकार अपने से स्वतन्त्र पर्याय में होता है। ऐसा पर्याय का स्वभाव... स्वभाव ऐसा है। उसको पर की अपेक्षा नहीं। विकार के षट्कारक परिणामन में पर की अपेक्षा नहीं, तो निर्विकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि परिणाम... आहाहा! यह तो धर्म की पहली सीढ़ी है, बापू! यह कठिन बात है। इस सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का कर्ता कौन और वो किसका कार्य, कैसे होता है, यह दशा कैसी होती है? आहाहा! इसके बिना सब शून्य है। सम्यग्दर्शन बिना प्रतिमा, साधुपना, २८ मूलगुण, पंच महाव्रत सब संसार है। सब संसार है। शुभभाव को संसार कहा है।

यहाँ कहते हैं, परिणाम उसका कार्य है। परिणाम का कर्ता वह द्रव्य है और वह परिणाम उसका कार्य-कर्म है। आहाहा! कर्ता राग और निर्मल पर्याय—समकित कर्म, ऐसा है नहीं। समझ में आया? निश्चय से किसी का किसी के साथ... निश्चय से—यथार्थ में—वास्तव में। किसी का किसी के साथ कर्ताकर्मसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! भगवान की वाणी कर्ता और सामने श्रोता को ज्ञान होता है, ऐसी कोई (व्यवस्था) है नहीं। अरेरे! यह बात स्वीकार करना... आहाहा! यह तो शान्त मार्ग वीतराग का है। श्रीमद् कहते हैं एक बार 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल रे, गुणवंता रे ज्ञानी अमृत वरस्या रे पंचमकाल में।' आहाहा! वचनामृत वीतराग के और परम शान्तरसमूल... परम शान्ति—रागरहित शान्ति, यह वीतराग के वचन का सार है। औषध जो भवरोग के... यह वीतराग की वाणी में भाव कहे, वह भव के रोग नाश करने की बात है। औषध जो भवरोग के, परन्तु कायर को प्रतिकूल। आहाहा! शास्त्र में तो वहाँ तक कहा है कि शुभभाव का रुचिवन्त है, वह

नपुंसक है, पावैया—हिंजडा है। अपने पुरुषार्थ की उसको खबर नहीं। दो-तीन जगह आया है समयसार में। 'क्लीब... क्लीब...' संस्कृत में 'क्लीब' है। नपुंसक। शुभभाव की रचना करनेवाला और शुभ से धर्म होता है, ऐसा माननेवाला नपुंसक—हिंजडा है, पावैया है। ऐ सेठ!

मुमुक्षु : कहाँ लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार में लिखा है। यह समयसार नहीं ? नाम बताना है ? यह समयसार है या नहीं ? ४३ के एक गाथा पहले। ४३... ४३... ४३ हों ! कितने में ? ४३ गाथा में है, देखो ! पृष्ठ ८२ है। ४३ गाथा, पश्चात् उसकी टीका। ४१, ४२, ४३ गाथा उसकी टीका। आहाहा ! इस जगत में आत्मा का असाधारण लक्षण न जानने के कारण नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए... दूसरी जगह भी है। यह तो एक जगह... आहाहा ! है ? ४१, ४२, ४३ गाथा, उसकी टीका। टीका-टीका। आया हाथ ? क्या है ? इस जगत में आत्मा का असाधारण लक्षण... जानना-देखना, यह तो भगवान आत्मा (का लक्षण) है। उसका लक्षण राग करना कि पर का करना है ही नहीं और शुभराग करने से धर्म होता है, ऐसा उसका लक्षण भी नहीं। आहाहा !

लक्षण न जानने के कारण नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए... है या नहीं श्लोक ? पृष्ठ में अन्तर हो गया। ये हिन्दी है। ये भी हिन्दी है ? ८२ पृष्ठ है हिन्दी में। टीका की पहली लाईन है। आहाहा ! दूसरी जगह है, परन्तु यह एक नमूना बस है। दूसरा जगह... परन्तु यहाँ इतना आया। १५४ पृष्ठ ? गाथा। हाँ। यह सामायिक में है। सामायिक का पाठ है न, उसमें है। हाँ, हाँ। ये निकाला। ये सब बताया है। ये कोई नया नहीं है, बहुत बार बताया है पहले। क्या आया ? यहाँ चिह्न नहीं, इसलिए खबर नहीं। १५७ ? कितनी ? १५४ गाथा। १५४। आहाहा ! यह तो हिन्दी है न, तो चिह्न नहीं किया है। देखो ! देखो, इसमें है। १५४।

समस्त कर्म के पक्ष का नाश करने से... १५४ की टीका। समस्त कर्म के पक्ष का नाश करने से उत्पन्न होनेवाला जो आत्मलाभ (निजस्वरूप की प्राप्ति)... आत्मलाभरूप मोक्ष को इस जगत में कितने ही जीव चाहते हुए भी, मोक्ष के कारणभूत

सामायिक की—जो (सामायिक) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभाववाले परमार्थ भूत ज्ञान के भवनमात्र है... सामायिक और सम्यग्दर्शन तो आत्मा का भवन—आत्मा के स्वरूप में परिणमन है। आहाहा! है? एकाग्रतालक्षणयुक्त है और समयसारस्वरूप है, उसकी—प्रतिज्ञा लेकर भी... प्रतिज्ञा लेते हैं कि हमको सामायिक करना मोक्षमार्ग... आहाहा! प्रतिज्ञा लेकर भी दुरन्त कर्मचक्र को पार करने की नपुंसकता के... शुभ से पार होना, यह नहीं करते। शुभ में रहना, वह नपुंसक है। आहाहा! क्यों? आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है। ४७ शक्ति में है पीछे। तो वीर्यगुण का कार्य क्या? भगवान तो वहाँ कहते हैं कि अपने स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। राग की रचना करे, वह नपुंसक है। आहाहा! सब नपुंसक ही है, भान कहाँ है? आज का थोड़ा नया आया, हों! आहाहा! है अन्दर?

अपनी सामायिक की प्रतिमा करे कि हमें नव कोटि से राग का त्याग और हमारे धर्म... परन्तु शुभभाव से न हटना, यह नपुंसकता है। हटता नहीं। नपुंसक वहाँ शुभभाव में रुक जाता है। आहाहा! आत्मा में वीर्य नाम का गुण है। इस गुण का पीछे लिखा है शक्ति में। सब आधार देने जाये तो देर लगे। वीर्यगुण का कार्य क्या है? कि अपनी जो शुद्ध पवित्र जो शक्तियाँ अनन्त हैं, उसकी पर्याय में रचना करना, वीर्य से शुद्ध की रचना करना, वह वीर्यगुण का कार्य है। आहाहा! स्वरूप की शुद्ध रचना करना, आहाहा! यह वीर्य अर्थात् आत्मा का पुरुषार्थ है। यह वीर्य रेत है (जिससे) पुत्र-पुत्री होते हैं, वह तो जड़ मिट्टी-धूल है। आत्मा में पुरुषार्थ—वीर्य नाम का ऐसा एक गुण है कि जो अपनी अनन्त शक्ति—गुण निर्मल हैं—पवित्र हैं, उसकी पर्याय में रचना करे। राग की रचना नहीं। आहाहा!

तथापि ज्ञानी को राग आता है, परन्तु राग का कर्तृत्व मेरा है, राग मुझे करनेयोग्य है, ऐसा है नहीं। एक बात। और दूसरी बात ऐसे भी है कि ज्ञानी को राग आता है भक्ति आदि का, यह परिणमन है तो राग का कर्ता मैं हूँ, ऐसा भी मानता है। नय के अधिकार में आता है। ४७ नय। करनेयोग्य है, ऐसे नहीं, परन्तु परिणमन होता है, उस कारण से कर्ता कहने में आता है। आहाहा! इतनी अपेक्षायें। प्रभु... प्रभु का पार नहीं मिले।

वीतरागमार्ग गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर... आहाहा! उसका एक-एक पद और एक-एक श्लोक समझना बहुत अलौकिक बात है। इसको ऐसे वांचा जाये, पढ़ा जाये... एक व्यक्ति ने (कहा), महाराज! स्वामीजी! आप समयसार की बहुत प्रसिद्धि—महिमा करते हो। हमने तो १५ दिन में समयसार पढ़ लिया। आहाहा! अरे भाई! एक लाईन समझना, एक गाथा और एक पंक्ति समझना अलौकिक बात है। आहाहा!

कहते हैं कि जो कोई अपने स्वरूप में प्रतिज्ञा करके... हमें सामायिक करना है और सामायिक मेरे मोक्ष का कारण है, ऐसी प्रतिज्ञा लेकर भी शुभभाव से हटते नहीं और अपनी प्रतिज्ञा अनुसार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति करते नहीं और राग की परिणति में पड़ा है, आहाहा! नपुंसक है—पावैया है—हिंजड़ा है। जैसे नपुंसक को वीर्य होता नहीं तो पुत्र होता नहीं, पुत्र-पुत्री। इसी प्रकार शुभभाव नपुंसक है। शुभभाव में से धर्म की प्रजा उत्पन्न होती नहीं। अरे, भारी कठिन बात! तथापि ज्ञानी को भी शुभभाव आता है। जानता है कि मेरी कमजोरी है। हमारा मूल वीर्य है, इसका कार्य है नहीं। मेरा पुरुषार्थ है जो अन्दर, आहाहा! उसका कार्य नहीं। क्योंकि वीर्य तो पवित्र है अन्दर। अनन्त गुण के साथ में वीर्यगुण पवित्र है। पवित्र का कार्य तो पवित्रता की रचना, यह कार्य है। और राग की पर्याय में दुःख उत्पन्न होता है, यह मेरे पवित्र पुरुषार्थ—वीर्य गुण का कार्य नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ज्ञानचन्दजी आये नहीं थे न। कहे, दोबारा थोड़ा लो। तो कहीं इसका यह दोबारा आये, ऐसा कुछ है? यह तो आनेवाला हो, वह आये।

किसी के साथ कर्ताकर्म सम्बन्ध नहीं। इसलिए जीव अपने परिणाम का कर्ता है... है? और अपने परिणाम कर्म हैं। इसी प्रकार अजीव अपने परिणामों का ही कर्ता है... आहाहा! और अपने परिणाम कर्म हैं। कर्म अर्थात् कार्य। इस प्रकार (जीव) दूसरे के परिणामों का अकर्ता है। ये सिद्ध किया, लो।

इस प्रकार जीव अकर्ता है तथापि उसे बन्ध होता है, यह कोई अज्ञान की महिमा है, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं। उसका कलश है। अच्छी बात है। एक कलश लेंगे।

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
 स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः ।
 तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
 स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥१६५॥

(स्वरसतः विशुद्ध) निजरस से विशुद्ध है... भगवान तो । आहाहा ! अपनी शक्ति—
 अपना रस—अपने स्वभाव से तो प्रभु आत्मा पवित्र है । आहाहा ! है ? निजरस से विशुद्ध
 और (स्फुरत-चित्-ज्योतिर्भिः छुरित-भुवन-आभोग-भवनः) स्फुरायमान होती हुई...
 आहाहा ! क्या कहते हैं ? भगवान (आत्मा) तो शुद्ध चैतन्यघन विशुद्ध है और उसमें से
 जो पर्याय प्रगट होती है—स्फुरायमान होती है, वह पवित्र होती है । आहाहा ! जो
 स्वभाव सर्वज्ञस्वरूपी है... आहाहा ! जरा सूक्ष्म बात है । सर्वज्ञस्वभाव का प्रत्येक
 (गुण) में उसका रूप है । बहुत विचार किया परन्तु हमको बराबर बैठा नहीं । भगवान
 की वाणी की इतनी बात... प्रत्येक का बहुत विचार किया । सर्वज्ञ नाम का स्वभाव है...
 पाठ ऐसा है कि प्रत्येक गुण में उसका रूप है । अन्दर पकड़ में आता नहीं । आहाहा !

मुमुक्षु : आपको नहीं बैठता हो हमको....

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ में आता नहीं । जो हो ऐसा कहते हैं, बापू ! बहुत सूक्ष्म
 विचार करते हैं... सर्वज्ञ(गुण) है, उसका प्रत्येक गुण में रूप क्या ? रूप कहा है,
 चिद्विलास में 'रूप' कहा है । अस्तित्वगुण का रूप, प्रमेयत्वगुण का रूप, वह तो
 ख्याल में आ जाता है । जैसे ज्ञान है और अस्तित्वगुण भिन्न है । ज्ञानगुण है, वह
 अस्तित्वगुण से है, ऐसा नहीं । अस्तित्वगुण भिन्न है । क्योंकि 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः'
 उमास्वामी का सूत्र है । तत्त्वार्थसूत्र में । 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' गुण के आश्रय से
 गुण नहीं, गुण का आश्रय द्रव्य है । आहाहा ! तो कहते हैं, यहाँ चैतन्यज्योति प्रगट होती
 है—स्फुरायमान होती है । सर्वज्ञगुण आदि स्वभाव जो है, वह पर्याय में प्रगट होता है ।
 किसी की अपेक्षा से नहीं, किसी के कारण से नहीं । आहाहा ! है ?

जिसकी स्फुरायमान ज्योति हुई... चैतन्यज्योतियों के द्वारा लोक का समस्त
 विस्तार व्याप्त हो जाता है... आहाहा ! अपने स्वभाव की पर्याय प्रगट होते ही सारे लोकालोक

को जान लेते हैं। व्याप्त होता है, उसका अर्थ यह है। सारे लोकालोक को जान लेते हैं। कोई चीज़ को करता तो नहीं, परन्तु कोई चीज़ जानने में आये बिना रहती नहीं। आहाहा! अपने अतिरिक्त कोई चीज़ का कर्ता नहीं और अपने सिवा अनन्त चीज़ को जाने बिना रहता नहीं। आहाहा! ऐसा स्वभाव है प्रभु! बहुत कठिन काम है, भाई! विचार तो... यहाँ तो पूरे दिन निवृत्ति है। तो यही पद्धति चलती होती है। बहुत बार तो सूक्ष्म बात पड़े तो हमको पता नहीं लगता। समझ में आया ?

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ये अपना गुण है। ज्ञानगुण है, यह अस्तित्वगुण से भिन्न है। अस्तित्वगुण का ज्ञान में रूप है, इसका अर्थ? कि ज्ञान 'है' वह अपने से है, ऐसा अस्तित्व का रूप उसमें है। अस्तित्व गुण नहीं। अरे! अरे! समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी है, भगवान आत्मा अस्तित्वस्वरूपी है। अस्तित्व का ज्ञानगुण में (रूप है)। अस्तित्वगुण के कारण से ज्ञानगुण है, ऐसा नहीं और अस्तित्वगुण का ज्ञानगुण में रूप है। रूप का अर्थ ज्ञानगुण 'है', वह अपने अस्तित्व से है। अस्तित्वगुण के कारण से है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह बात तो सूक्ष्म है, बापू!

मुमुक्षु :स्वभाव ज्ञान ही है, अस्तित्व स्वभाव ज्ञान ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान है, यह तो भिन्न बात है। परन्तु ज्ञान सर्वज्ञ(स्वभावी) है और सब गुण में उसका में रूप है, ये क्या—उसका पता नहीं लगता। भाई लालचन्दभाई! यहीं तो देखा हो, ऐसा कहना। क्योंकि बात तो बहुत सूक्ष्म विचार बहुत ले गये... एक-एक बात, शास्त्र की एक-एक गाथा बहुत स्पष्टीकरण करके हम समझते हैं अन्दर। ऐसे (ऊपर से) मान लेना, ऐसा नहीं। भाव में भासन होना चाहिए। ज्ञान है, उसमें अस्तित्व गुण नहीं, परन्तु अस्तित्व का रूप है, ये तो बराबर है। क्यों? ज्ञान है तो ज्ञान 'है' न? 'है' तो उसका 'है'पना आया अपने से। तो ऐसा एक गुण में दूसरे गुण का रूप भले हो, परन्तु सर्वज्ञ का रूप क्या है? सूक्ष्म पड़ता है भैया! भगवान कहते हैं तो यथार्थ है, परन्तु उसका पार ले सके नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ये स्फुरायमान ज्योति जब प्रगट होती है तो लोकालोक को जानती है, ऐसा कहते हैं। है? समस्त विस्तार व्याप्त हो जाता है, ऐसा जिसका स्वभाव

है... ऐसा तो जीव का स्वभाव है। आहाहा! अन्दर सर्वज्ञस्वभाव है... पर्याय में सर्वज्ञपना प्रगटे ये तो उसका स्वभाव है। प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर पड़ा है भगवान (आत्मा) पूर्णानन्द सर्वज्ञ (स्वभावी)। यह पर्याय में सर्वज्ञपना आता है, यह उसमें से आता है। उस सर्वज्ञपने में लोकालोक जानने में आता है। भले क्षेत्र इतने में है शरीर प्रमाण से। आकाश का अन्त नहीं (कि) कहाँ आकाश पूरा हुआ? (अन्त) हुआ तो पीछे क्या? उसका भी ज्ञान में (प्रमाण) आ जाता है। तो (प्रमाण) आ जाता है, इसलिए आकाश का अन्त आ गया—ऐसा है नहीं। अनन्त को अनन्तरूप से जानने में आया। अनन्त को जाना तो अन्त हो गया? समझ में आया? आहाहा!

(अयं जीवः) ऐसा यह जीव (इति) पूर्वोक्त प्रकार से... आहाहा! (परद्रव्य का तथा परभावों का) (अकर्ता स्थितः) अकर्ता सिद्ध हुआ... अमृतचन्द्राचार्य। क्रमबद्ध की टीका भी उन्होंने की और फिर कलश भी उन्होंने किये। यह क्रमबद्ध का कलश है। जैसे मन्दिर बनाकर पीछे कलश चढ़ाते हैं, ऐसे यह टीका है मन्दिर और ऊपर कलश चढ़ाया। आहाहा! अलौकिक बात है। दुनिया से (भिन्न) ये वस्तु ऐसी है कि ऐसी बात कहनेवाले को पागल कहे। परमात्मप्रकाश में आया है। पागल लोग ज्ञानी को पागल माने, ऐसी ये चीज़ है। आहाहा! अरेरे! वस्तु... यहाँ यह कहा। जो अन्दर शुद्धस्वरूप है... अकर्तापना क्यों है? कि ज्ञानज्योति भगवान पूर्ण स्वरूप है, आहाहा! उसकी शक्ति में से पूर्ण जानने की व्यक्तता आती है, परन्तु किसी चीज़ का वह कर्ता है और किसी चीज़ से ये केवलज्ञान स्फुरायमान हुआ ऐसा है नहीं। आहाहा! कर्म के क्षय से केवलज्ञान हुआ ऐसा है नहीं। ये तो अपेक्षा हो गयी। पहले तो कहा कि निरपेक्ष (तत्त्व है)। आहाहा! भभूतमलजी! ये कहीं सुना ही नहीं पैसे में। यह सब लोहे का धन्धा... लोहे में तो जंग लगता है। लोहा... लोहा... जंग... जंग... आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! मैंने अकर्ता क्यों कहा? क्रमबद्ध में अकर्ता(पना) क्यों कहा? कि प्रभु का स्वरूप तो सर्वज्ञस्वभावी है न। यह कहा न पहले? निजरस से विशुद्ध है... निजरस से विशुद्ध है। अपनी शक्ति-गुण से पवित्र है। आहाहा! पर के कारण से है नहीं। अपने रस से विशुद्ध है। आहाहा! और जिसकी स्फुरायमान होती हुई चैतन्यज्योतियों

के द्वारा... चैतन्य की प्रकाशपर्याय हुई... आहाहा! उसके द्वारा लोक का समस्त विस्तार व्याप्त हो जाता है... यह व्यवहार से बात करते हैं। यह ज्ञान की सर्वज्ञशक्ति है, यह पर्याय में आयी तो सर्व लोक को जानते हैं। लोकालोक को जानते हैं, (ऐसा कहना भी) व्यवहार है। वास्तव में अपनी पर्याय को ही जानते हैं। लोकालोक को तो पर्याय छूती ही नहीं। परन्तु दुनिया ने ख्याल में आवे कि स्फुरायमान शक्ति की शक्ति (-सामर्थ्य) कितनी है, ये माप बताने को 'लोकालोक जानते हैं' ऐसा कहा। आहाहा! ऐसी धर्म की चीज़ है भाई! क्या हो?

चैतन्यज्योतियों के द्वारा... चैतन्यज्योतियों से हों, एक पर्याय नहीं। अनन्त प्रकाश पर्याय हुई। सर्वज्ञ जहाँ हुए तो चैतन्य की सब शक्तियाँ पूर्ण प्रकाशमान हो गयी। चैतन्य की एक सर्वज्ञपर्याय जहाँ प्रगट हुई तो उसके साथ सर्व शक्ति की व्यक्तता हो गयी। शक्ति की स्फुरायमान चैतन्यज्योतियाँ... जितनी चैतन्यज्योति हैं, इतनी सब पर्याय में स्फुरायमान हो गयी। आहाहा! ऐसा यह जीव... आहाहा! पूर्वोक्त प्रकार से (परद्रव्य तथा परभावों का अकर्ता...) देखो! अकर्ता सिद्ध हुआ। तथापि... ऐसा होने पर भी... प्रभु! तू ऐसा है ही। आहाहा!

तथापि उसे इस जगत में... आहाहा! कर्मप्रकृतियों के साथ जो यह (प्रगट) बन्ध होता है... अरे रे! ऐसी चीज़ चैतन्यज्योति जलहल ज्योति... देवीलालजी कहाँ बैठे हैं? नहीं? नहीं हैं। कुछ काम होगा। हैं? नहीं हैं। यह तो चैतन्य की स्फुरायमान ज्योति... एक ज्ञान (पर्याय) स्फुरायमान नहीं (होती), चैतन्य की सर्व शक्तियाँ हैं... जैसे सर्वज्ञपना पूर्ण हुआ, ऐसे सर्व शक्ति की पर्याय में पूर्णता प्रगट हुई। आहाहा! अरेरे! ऐसी वस्तुस्थिति है तो भी जगत में कर्मप्रकृतियों के साथ बन्ध होता है! आहाहा! अरेरे! ऐसा कर्म का बन्धन! आहाहा!

क्योंकि (सः खलु अज्ञानस्य कः अपि गहनः महिमा स्फुरति) सो वह वास्तव में अज्ञान की कोई गहन महिमा... आहाहा! इसके स्वभाव की गहन महिमा है, परन्तु उसके अज्ञान की गहन महिमा (देखो कि) ऐसी चीज़ को बन्ध होता है! आहाहा! यह क्या आया? महाप्रभु चैतन्यज्योति अन्दर शक्ति से स्फुरायमान वस्तुरूप, लो। समझ में

आया ? ऐसी चीज़ है, आहाहा ! अनन्त चैतन्य शक्तियों से विराजमान, स्फुरायमान चैतन्य ज्योति परमात्मा है, ऐसी चीज़ को प्रकृति का बन्ध होता है ! अरेरे ! यह क्या होता है ? ऐसे कहते हैं ।

कर्मप्रकृतियों के साथ प्रगट बन्ध होता है, यह वास्तव में अज्ञान की कोई गहन महिमा है । आहाहा ! अरेरे ! अज्ञान समझना... ऐसी चीज़ में... अज्ञान की कोई गहन महिमा है कि उसको कर्मप्रकृति का बन्ध होता है । जिसमें अनन्त ज्योति स्फुरायमान-अन्दर प्रगट है । एक नहीं परन्तु अनन्त चैतन्यज्योति प्रगट है, ऐसा अपना परमात्मस्वरूप है, उसको कर्मप्रकृति का बन्धन हो, यह कोई अज्ञान की महिमा है । वस्तु के स्वरूप का भान नहीं । अज्ञान की गहन महिमा है । पार न पावे, ऐसा अर्थ लिखा है टीका में । गहन अर्थात् पार न पावे । पार तो पा लेते हैं समकृति । परन्तु अज्ञान की ऐसी गहन महिमा है कि ऐसा चैतन्य स्फुरायमान अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु, आहाहा ! उसको कर्मबन्धन हो, यह कोई अज्ञान से होता है । अज्ञान की कोई गहन महिमा है । उस अज्ञान का नाश आत्मा के स्वभाव के आश्रय से हो सकता है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



Vitragvani

www.vitragvani.com